श्री० इन्द्र विद्यावाचस्पति जी
को
सप्रेम भेंट
- गोविन्ददास
२५-३-५६

सन्तोष कहाँ ?

[नाटक]

गोविन्द दास

कल्याण साहित्य मन्दिर
प्रयाग

शिवरात्रि २००२

प्रकाशक—
सोमेश्वर प्रसाद गुप्त,
कल्याण साहित्य मन्दिर, प्रयाग

प्रथम संस्करण
१॥)

मुद्रक—
महेश प्रसाद गुप्त,
केसरवानी प्रेस, प्रयाग

पात्र

मनसाराम

नीतिव्रत---मनसाराम का मित्र

मनोहर---मनसाराम का पुत्र, जिसका राजकुमार गरीबदास, स्वराजचन्द्र विभिन्न नाम हैं।

रमा

पहला अंक

स्थान—नगर में मनसाराम के घर का एक छोटा सा कमरा
समय—सन्ध्या

[कमरे की दीवालें और छत यद्यपि कलई से पुती हुई हैं, तथापि बहुत दिनों से पुताई न होने के कारण मैली पड़ गयी हैं। दीवालों में कुछ दरवाजे और खिड़कियाँ हैं, इनकी चौखटों तथा किवाड़ों की लकड़ी का रंग भी बहुत भद्दा हो गया है। जमीन पर एक टाट बिछा है, वह भी यहाँ वहाँ से फट गया है। कमरे में एक टूटी सी टेबिल, लोहे की दो कुर्सियाँ और एक टूटी सी लकड़ी की बेंच के सिवा और कोई फर्नीचर नहीं है। हाँ, टेबिल पर कुछ किताबें अवश्य रखी हैं और ये सब नई तथा बहुत अच्छी हालत में हैं। मनसाराम लोहे की कुर्सी पर बैठा हुआ एक किताब पढ़ रहा है। उसकी अवस्था करीब २५ साल की है। रङ्ग गोरा है। वह साधारण ऊँचाई और शरीर का सुन्दर युवक है। सिर पर सँवारने योग्य काले बाल हैं, पर ये सँवारे नहीं जाने के कारण अस्तव्यस्त हैं। छोटी छोटी मूँछे हैं। वह एक फटा

सा छोटा कोट, फटा सा कमीज और मैली सी धोती पहने है। दाहिनी तरफ के दरवाजे से नीतिव्रत का प्रवेश। नीतिव्रत की उम्र मनसाराम के बराबर सी ही है। वह सावले रङ्ग का ठिगना और कुछ मोटा व्यक्ति है। सँवारे हुए सुन्दर बाल हैं। मूँछे दाड़ी मुड़े हुए। कपड़े पश्चिमी ढंग के हैं। मनसाराम पढ़ने में इतना निमग्न है कि उसे नीतिव्रत के जूतों की आहट भी सुनाई नहीं देती और उसे नीतिव्रत के आने का पता तब चलता है, जब नीतिव्रत उसके निकट आकर उसके एक कन्धे पर हाथ रखता है।]

मनसाराम—

(नीतिव्रत के हाथ रखने के कारण कुछ चौकते हुए) कौन ?

[नीतिव्रत हँस पड़ता है। मनसाराम किताब को टेबिल पर रखते हुए खड़ा होता और मुस्कराता है।]

नीतिव्रत—

पढ़ने में इतने तल्लीन थे कि मेरे आने की भी आहट न मिली ? (किताब को देखते हुए) कौन सी पुस्तक है ?

मनसाराम—

अभी निकली है, आज ही लाया हूँ।

नीतिव्रत—

(पुस्तक को ही देखते देखते) कल तो भाभी कहती थीं कि घर में शक्कर के लिए पैसा नहीं है। आज किताब के लिए आ गया ?

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

उधार लाया हूं, भाई, (मुस्कराते हुए) और पुस्तकों के लिए आ भी जाता है (कुछ रुककर) बैठो न ?

नीतिव्रत—

(पुस्तक टेबिल पर रख दूसरी कुर्सी पर बैठते हुए) तुम भी विचित्र मनुष्य हो, क्षमा करना यदि यह कहूँ कि घर का यह हाल रहते हुए पुस्तके खरीदना······

मनसाराम—

मैं जानता हूँ कि यह अच्छी बात नहीं है।

नीतिव्रत—

और पढ़ने का यदि इतना ही शौक है तो किसी लायब्रेरी के मेम्बर हो सकते हो।

मनसाराम—

लायब्रेरी ! यहाँ कोई लायब्रेरी जैसी चीज है भी ?

नीतिव्रत—

एक क्या कई हैं।

मनसाराम—

पर उन सब को तो मैं पढ़ चुका हूँ। वे ही युगों पुरानी किताबें !

नीतिव्रत—

पर भाई, घर की यह हालत होते हुए पुस्तकों की यह खरीद तो

अक्षम्य बात है। (कमरे को चारों तरफ से देखते हुए) इस घिनौने घर को तो देखो, कितने वर्षों से इस कमरे की पुताई नहीं हुई। टाट की बिछावन, सो भी फटा हुआ। फर्नीचर तो बस भगवान का नाम है। जरा अपने कपड़े देखो ! किसी भले आदमी को ऐसी जगह और ऐसी हालत में बुलाया तक नहीं जा सकता।

मनसाराम—

(मुस्कराते हुए) पर कुछ भले आदमी बिना बुलाये ही आ जाते हैं। तुम ही आ पहुँचे।

नीतिव्रत—

मेरी बात छोड़ दो। मैं तो तुम यदि घूरे में भी रहोगे तो वहाँ भी जा पहुँचूँगा, पर, मनसाराम···क्या, तुम्हें इस प्रकार की रहन-सहन से सन्तोष है ?

मनसाराम—

यह तुमने बड़ा अजीब सवाल पूछा।

नीतिव्रत—

क्यों ?

मनसाराम—

इसलिए कि मुझे सन्तोष तो किसी बात से होता ही नहीं।

नीतिव्रत—

याने ?

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

एक ही दृष्टान्त देता हूँ। दूसरों के सामने तो न कहूँगा, पर तुम से तो सभी कुछ कह सकता हूँ।

नीतिव्रत—

इसमें भी कोई सन्देह है ?

मनसाराम—

तुम एक बात तो मानोगे न, कि मैंने बहुत पढ़ा है।

नीतिव्रत—

इसमें क्या शक है। अब तक तुमने इसके सिवा किया ही क्या है। एम० ए० में तो सैकिन्ड डिवीजन में इसीलिए आये कि कोर्स बुक्स कम और बाहर का न जाने कितना खुराफात पढ़ा करते थे। विद्यार्थी जीवन के बाद जब से मास्टर हुए तब से भी वही हाल है। मैं तो समझता हूँ कि दूर दूर तक ऐसा अध्यवसायी और पठित मनुष्य न निकलेगा।

मनसाराम—

खैर, अब यह तो तुम बहुत आगे बढ़ गये, पर मैं भी इतना मानता हूँ कि मैंने पढ़ा है। (कुछ रुककर) पर, नीतिव्रत ! मुझे अपने इस अध्ययन से भी सन्तोष नहीं है।

नीतिव्रत—

आश्चर्य की बात है, अध्ययन से भी सन्तोष नहीं है।

मनसाराम—

नहीं। (कुछ रुककर) किसी भी नई पुस्तक का विज्ञापन पढ़ता हूँ, या नाम सुनता हूँ तो उसे मँगाता हूँ, पढ़ता हूँ, पर सन्तोष नहीं होता। सोचता हूँ इससे फायदा ? (कुछ रुककर) और फिर जब (चारों ओर देखकर) इस गरीबी पर ध्यान जाता है, और बच्चे का कष्ट देखता हूँ, तुम्हारी ये बातें सुनता हूँ, तब तो और व्यथित हो जाता हूँ।

नीतिव्रत—

पर व्यथित भर होने से होता क्या है ? इस सम्बन्ध में करते क्या हो ? कुछ नहीं। देखो, तुम और मैं दोनों ही एम० ए० में सैकिन्ड डिवीजन में आये। मैं प्रयत्न करके प्रोफेसर हो गया और तुम अब तक साठ रुपये मासिक के मास्टर ही बने हो।

मनसाराम—

(कुछ सोचते हुए) जिस तरह की कोशिश तुमने की वह मुझसे होती नहीं, नीतिव्रत !

नीतिव्रत—

(कुछ सोचते हुए) यह मैं भी मानता हूँ, पर चलो, कोई हर्ज नहीं, अब मैं घुस ही गया हूँ, मैं तुम्हारे लिए प्रयत्न करूँगा (कुछ रुककर) पर उससे यह गरीबी दूर होगी क्या ? छात्रवृत्ति का बहुत सा रुपया पुस्तकों की खरीद में जाता था। इस वक्त के वेतन का भी वही हाल है। सम्भव है प्रोफेसरी की तनख्वाह भी इन्हीं कागजों के पुलिन्दों

संतोष कहाँ ?]

में चली जाय और यहाँ की दीवालें, छत और फर्नीचर फिर भी ऐसा ही बना रहे।

मनसाराम—

(मुस्कराते हुए) असम्भव नहीं है।

[बाईं ओर के दरवाजे से रमा का प्रवेश। उसकी अवस्था लगभग २२ वर्ष की है। वह गौर वर्ण और सुघड़ मुख तथा शरीर की सुन्दर स्त्री है। सफेद सूती साड़ी तथा वैसा ही एक सलूका पहने है। हाथों में काँच की एक एक चूड़ी के सिवा और कोई आभूषण शरीर पर नहीं है। रमा को देखकर नीतिव्रत खड़ा हो जाता है।]

नीतिव्रत—

(हाथ जोड़कर) नमस्ते, भाभी जी ! बैठिये।

रमा—

(नमस्कार का नम्रतापूर्वक उत्तर देते हुए कोमल स्वर से) नमस्ते, नीतिव्रत जी ! बैठिए-बैठिए, आप तो बैठिए।

नीतिव्रत—

(बेंच पर बैठते हुए) यह लीजिए।

रमा—

यह तो वही पुराना झगड़ा निकल आया।

नीतिव्रत—

लेकिन आपकी उपस्थिति में आप बेंच पर बैठें और मैं कुर्सी पर

यह कैसे हो सकता है ?

रमा—

पर आप मेहमान हैं, नीतिव्रत जी !

नीतिव्रत—

और आप महिला हैं।

मनसाराम—

(मुस्करा कर) गल्ती मेरी है, भाई, कि मैं एक कुर्सी और नहीं ले आता।

नीतिव्रत—

कुर्सी नहीं तुम तो किताबें लाओगे। (रमा से) आप बैठेंगी नहीं ?

रमा—

(मुस्कराते हुए) मैंने निश्चय कर लिया है कि यदि आप बेंच पर बैठेंगे तो मैं खड़ी ही रहूँगी।

नीतिव्रत—

चाहे कुर्सी खाली पड़ी रहे ?

रमा—

जी, हाँ।

[नेपथ्य में बच्चे के रोने की आवाज आती है।]

रमा—

हाँ, मैं इसलिये आई थी कि दूध का वह डब्बा खत्म हो गया है।

संतोष कहाँ ?]

डाक्टर ने गाय के दूध देने के लिये नाहीं की है, और अभी के लिये भी दूध नहीं है।

[नेपथ्य में रोने की आवाज बढ़ती है। रमा जल्दी से जाती है। मनसाराम सिर झुका लेता है।]

नीतिव्रत—

मनसाराम !

मनसाराम—

(सिर उठाते हुये) कहो, भाई !

नीतिव्रत—

यह क्या हाल है ? यह तो बड़ी शोचनीय अवस्था होती जाती है। (कुछ रुक कर) पहिले तुम अकेले थे, फिर दो हुए पर खैर दोनों बच्चे नहीं थे। अब तो बच्चा है। वह भी अबोध ! पुस्तकें पढ़ने के सिवा तुम्हारी और भी कुछ जिम्मेदारी है।

[मनसाराम कोई उत्तर नहीं देता। उसकी आँखों में आँसू छलछला आते हैं।]

नीतिव्रत—

(उठते हुए) मैं अभी जाता हूँ और दूध का डब्बा लाता हूँ। पर यह···(जल्दी से प्रस्थान।)

मनसाराम—

(उठकर जोर से) नीतिव्रत ! नीतिव्रत !!

[नीतिव्रत नहीं लौटता । नेपथ्य में बच्चे का रोना बन्द हो जाता है । मनसाराम कुछ देर चुपचाप इधर उधर टहलता है । फिर टहलते टहलते एकाएक अपने आप बात करने लगता है ।]

ठीक है……ठीक है……पहले मैं अकेला था……फिर……फिर…दो हुए । दूसरा भी ऐसा मिला । दो हो गये हैं । यह…यह जान ही न पड़ा । दोनों बच्चे नहीं थे, यह…यह भी ठीक है ।…… पर…पर अब तो बच्चा है…… वह …… वह अबोध ।…… सचमुच पुस्तकें पढ़ने के सिवा……हाँ ……पुस्तकें पढ़ने के सिवा……इस ज्ञान उपार्जन के अतिरिक्त, मनसाराम, मनसाराम, तेरी, और भी कुछ जिम्मेदारी……हाँ…हाँ बड़ी भारी जिम्मेदारी है । प्रत्यक्ष से इस प्रकार आँखे मूँद पुस्तकों के कल्पनाक्षेत्र में विहार… यह तो असत्य… सर्वदा असत्य जीवन है । (एकाएक टेबिल की सब पुस्तकों को उठाकर खिड़की के बाहर फेकते हुए) मेरा…मेरा…बच्चा…मित्रों के पैसे के दूध …(जोर से) मित्रों के पैसे के दूध से पले ? और…और मैं बैठे बैठे पुस्तकें पढ़ूँ ? …धिक्कार है मुझे……धिक्कार है मेरे पौरुष को !…मनसाराम…मनसाराम तू बच्चा नहीं…अबोध नहीं…अज्ञानी नहीं…दुश्चरित्र नहीं……पर अकर्मण्यता……अकर्मण्यता का यह…यह

संतोष कहाँ ?]

जीवन······(चुपचाप फिर टहलने लगता है एकाएक) रमा ! रमा !!

[नेपथ्य से]—आई ।

[रमा का शीघ्रता से प्रवेश ।]

मनसाराम—

इतनी जल्दी क्यों, रमा ? ऐसा कोई काम नहीं था ।

रमा—

मैंने समझा शायद कोई जरूरी काम हो । (सिर नीचा कर लेती है)

मनसाराम—

(रमा की ओर देखते हुए) रमा ! तुम्हें मेरा कितना ख्याल है ?

रमा—

(मनसाराम की ओर देखते हुए) यह भी कोई आश्चर्य की बात है ।

मनसाराम—

(विचारपूर्वक) आश्चर्य की (कुछ ठहरकर) हाँ, रमा ! मेरे सदृश पति का इस तरह ध्यान रखना अवश्य आश्चर्य की बात है ।

रमा—

हिन्दू पत्नी के हृदय में पति कैसा है, यह भाव उठना ही पाप है ।

मनसाराम—

क्यों, रमा ! मुझमें इतनेदुर्गुण हैं ।

रमा—

मुझे तो एक भी नहीं दिखता।

मनसाराम—

(कुछ ठहरकर) एक भी नहीं ?

रमा—

एक भी नहीं।

मनसाराम—

(फिर कुछ ठहरकर) मेरी कुछ बातों का सच्चा उत्तर दोगी ?

रमा—

मैंने कभी झूठ बोला हो, और वह आपके सामने, यह मुझे याद नहीं आता।

मनसाराम—

अच्छा तो फिर आज तुमसे कुछ बातें पूछूँगा। समय है न ?

रमा—

आपके लिए समय! कैसी बातें करते हैं।

मनसाराम—

नहीं, मनोहर का कोई काम या घर का और कोई काम…

रमा—

मनोहर सो गया है, और दाल का अदहन चढ़ा आई हूँ। अभी तो कोई काम नहीं है।

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

(एक कुर्सी पर बैठते हुए) अच्छा, तो फिर बैठो।

[रमा चुपचाप बैठ जाती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

मनसाराम—

(रमा की ओर देखते हुए) क्यों रमा ! विवाह के पश्चात् आज तक मेरा तुमसे इतना कम बोलना, दिनरात पुस्तकों में ही गड़ा रहना तुम्हें कभी नहीं अखरा ?

रमा—

(कुछ देर सोचते रहने के बाद) आपके पास अधिक से अधिक रहने की इच्छा रहते हुए भी आपके साथ ज्यादा से ज्यादा बातचीत करने की अभिलाषा रखते हुए भी आपका मितभाषी रहना, या सदा पुस्तकों का अवलोकन करते रहना, मुझे अखरता नहीं है। (कुछ रुककर) अगर अखरे तो आप पर क्रोध आना चाहिये, वह आज तक कभी नहीं आया।

मनसाराम—

और घर का यह आर्थिक कष्ट कभी गेहूँ नहीं हैं तो कभी चावल नहीं, कभी घी नहीं है, तो कभी शक्कर नहीं, कभी कपड़े ही नहीं हैं और कभी और कुछ नहीं, इससे तुम्हें दुख नहीं पहुँचता ?

रमा—

(कुछ देर सोचने के पश्चात्) दुख ! नहीं, दुख तो कभी

नहीं पहुँचता, लेकिन यह इच्छा जरूर होती है कि यदि इस तरह की वस्तुओं का बाहुल्य हो तो आपको अधिक आराम पहुँचा सकूँ।

मनसाराम—

(आँखों में आँसू भरकर) ओह ! (कुछ रुककर) और इन आर्थिक अड़चनों के बाद भी जब तुम देखती हो कि पुस्तकें धड़ाधड़ आ रहीं हैं, तब तुम्हें बुरा नहीं लगता ?

रमा—

कदापि नहीं। मैं सोचती हूँ कि आपको उनसे सुख मिलता है।

[कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

मनसाराम—

क्यों, रमा ! बच्चा होने के पश्चात् भी तुम्हारी इन भावनाओं में कोई फर्क नहीं पड़ा ?

रमा—

(विचार कर कुछ संकोच से) नहीं, परन्तु····· परन्तु······ बच्चे की इस बार······इस बार की बीमारी······बीमारी शायद मुझे कुछ विचलित कर रही है। ···· (मनसाराम की ओर देखकर कुछ विचलित स्वर में) मनोहर···· यह बच्चा ···(रमा एकाएक रो पड़ती है।)

मनसाराम—

(कुर्सी से उठकर रमा के निकट जा उसकी टोड़ी पकड़कर

संतोष कहाँ !]

उसका मुख ऊँचा करते हुए, भर्राये स्वर में) मैं समझ गया रमा ! मैं समझ गया। तुम मानवी नहीं, देवी हो·····किन्तु···किन्तु··· बच्चों का कष्ट देवी माता भी नहीं देख सकतीं, उसे सहन नहीं कर सकतीं। मैंने, रमा ! अपने कर्त्तव्य का निश्चय कर लिया है। (रमा खड़ी होने लगती है) बैठो, बैठो, मैं भी बैठता हूँ। (अपनी कुर्सी को रमा के निकट खींचकर बैठते हुए) मैं इस तरह का अकर्मण्य जीवन एक दिन भी न बिताऊँगा। बच्चे का पालन मेरे मित्र के टकों से हो·········।)

रमा—

क्या···क्या कहा आपने ?

मनसाराम—

हाँ, नीतिव्रत अभी दूध का डब्बा लेने गया है।

रमा—

परन्तु मैंने कभी उनसे कोई चीज नहीं मंगाई।

मनसाराम—

मैं जानता हूँ, वह खुद गया है। तुम्हारी इसमें कोई गलती नहीं।

रमा—

(कुछ विचार कर) नहीं, मेरी ही गलती है, मुझे उनके सामने यह बात ही आपसे नहीं कहनी थी। कल भी मैंने इसी तरह एक भूल की थी।

मनसाराम—

कल ?

रमा—

हाँ, मैंने कहा नहीं था कि आज घर में शक्कर नहीं है।

मनसाराम—

खैर, जो हुआ, वह हुआ। यह कष्ट अब थोड़े, बहुत थोड़े दिनों का है। मैं धन कमाऊँगा, रमा! और थोड़ा बहुत नहीं, इस देश में कोई भी जितना ज्यादा से ज्यादा कमा सकता है, उतना। जब अपने पसन्द की अधिक से अधिक चीज से भी मुझे सन्तोष नहीं होता, तब थोड़े से धन से कैसे होगा? जिन्होंने धन कमाया हैं, उनमें से किसी से भी मुझ में कम बुद्धि है, यह बात मैं नहीं मानता। (कुछ रुककर) रमा! मैंने अपनी पुस्तकों से आज छुट्टी ले ली है। (उठकर खिड़की में से नीचे की ओर देखते हुए) देखो वह देखो।

रमा—

(उठकर उसी खिड़की से नीचे की ओर देखते हुए) अच्छा, आपने पुस्तकों को फेंक दिया?

मनसाराम—

हाँ, रमा! मैं एक बार में दो काम नहीं कर सकता, एक ही कर सकता हूँ। ध्यान बाँट कर कई जगह नहीं लगा सकता, एक स्थान पर ही लगा सकता हूँ।

[नेपथ्य में बच्चे के रोने की आवाज आती है। रमा शीघ्रता से जाती है। मनसाराम खिड़की से बाहर की ओर ही देखता रहता है।]

दूसरा अंक

स्थान—मनसाराम के आलीशान बंगले का एक सजा हुआ कमरा

समय—प्रातःकाल

[कमरे की दीवालों पर जमीन से पांच फुट ऊँची विलायती बेल बूटे दार चमकीली ईंटों का 'डेडो' है। उसके ऊपर दीवालें सुन्दर 'डिस्टेम्पर' रङ्ग से रङ्गी हैं। दीवालों में कई दरवाजे और खिड़कियाँ हैं। उनकी चौखटों और किवाड़ों की लकड़ी में खुदाई का काम है। किवाड़ों के ऊपरी भाग में फूलदार काँच लगे हैं। कुछ किवाड़ बन्द हैं और कुछ खुले। खुले हुए किवाड़ों से बाहर के सुन्दर उद्यान के कुछ हिस्से दिखाई देते हैं, जो उदय होते हुए सूर्य की सुनहरी किरणों से प्रकाशित हैं। दरवाजों और खिड़कियों पर महराबदार मखमली परदे पड़े हैं। दीवालों पर यत्र तत्र सुनहरी फ्रेमों में सुन्दर तैल चित्र टँगे हैं। कमरे की छत पर सिमेन्ट के बेलबूटे बने हैं और इनमें से

यत्र तत्र विजली के 'कट ग्लास' के झाड़ तथा श्वेत रङ्ग के सुन्दर पंखे झूल रहे हैं। कमरे की जमीन पर संगमरमर लगा है और उस पर छोटे-छोटे ईरानी कालीनों पर गद्दीदार सोफे, आराम कुर्सियाँ इत्यादि सजी हैं। कई टेबिलें भी रखी हैं, जो फूलदार रेशमी मेज पोशों से ढकी हैं। इन टेबिलों में से कुछ पर सुन्दर पुष्पों से भरे हुए गुलदस्ते और कुछ पर 'क्यूरिओं' तथा चाँदी के चौखटों में तस्वीरें सजी हैं। एक सोफा पर मनसाराम और नीतिव्रत बैठे हैं। मनसाराम टसर का पश्चिमी ढङ्ग का सूट पहने है। उसकी टाई में मोती का पिन लगा है और कोट के 'बटन होल' में हरी पत्तियों से युक्त पीले गुलाब का एक छोटा सा बटन

उसके बाल सुन्दरता से सँवारे हुए हैं। मूँछे 'बटरफ्लाई' ढङ्ग से कटी हैं। वह दाहिने हाथ की कनिष्टका उंगली में हीरे की एक सुन्दर अंगूठी पहने है और पैरों में काले चमकदार चमड़े के जूते। परन्तु इतनी शान शौकत पर भी उसके मुख पर हर्ष और सन्तोष के भाव नहीं हैं। नीतिव्रत अपनी साधारण वेष भूषा में है। इनके सोफा के सामने एक बड़ी सी टेबिल पर चाय का सामान है और दोनों चाय पीते हुए बातें कर रहे हैं।]

नीतिव्रत—

लो इस साल भी बम्बई और कलकत्ते दोनों ही कोठियों में गत वर्ष के सदृश ही फायदा हुआ।

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

उससे कुछ ज्यादा ही होगा, कम नहीं, नीतिव्रत !

नीतिव्रत—

इसे छप्पड़ फाड़ कर लक्ष्मी आना कहते हैं, सर मनसाराम !

मनसाराम—

(रूखी हँसी हँसकर) तुम भी मेरा नाम अब सर के साथ लोगे ?

नीतिव्रत—

क्यों ? सरकारी खिताब को तो सभी मानते हैं, मुझे नहीं मानना चाहिये ?

मनसाराम—

तुम्हारे लिये तो मैं वैसा ही हूँ, नीतिव्रत ! जैसा उस समय था, जब तुम्हारी दृष्टि में एक घिनौने घर में रहता था ।

नीतिव्रत—

इसमें क्या शक है, मनसाराम ! और तुम्हारी इस वक्त की इस हालत का मुझे कम श्रेय है, यह मैं नहीं मानता । कुछ ही वर्षों के भीतर तो यह सब कुछ हुआ—गाँव, कारखाने, बंगले……

मनसाराम—

(रूखी हँसी हँसकर) और यह सब बम्बई, कलकत्ते में जुआ खेलकर ।

नीतिव्रत—

जुआ खेल कर ! नहीं व्यापार करके ।

मनसाराम—

सट्टे का रोजगार जुआ से गया बीता है ।

नीतिव्रत—

इसे कौन देखता है, लोग देखते हैं रुपये को ।

मनसाराम—

लोग ही नहीं सरकार भी। उस रुपये का कुछ हिस्सा चन्दे में उसे देने से ही तो (रूखी गंध पर मुस्कराते हुए) नाइटहुड भी मिल गयी ।

नीतिव्रत—

हाँ, हाँ, नाइटहुड भी कोई छोटी चीज नहीं है ।

मनसाराम—

(रूखी हँसी के साथ) छोटी चीज क्यों है, बहुत बड़ी चीज है ।

नीतिव्रत—

मैंने तो समझा था, राजा की उपाधि मिलेगी, इसी आशा पर तो मैंने मनोहर का नाम बदल कर राजकुमार रखा था ।

मनसाराम—

तो नाइटहुड मिलने के कारण अब फिर उसका नाम बदलने की इच्छा है ?

संतोष कहाँ !]

नीतिव्रत—

वाह वाह ! बार बार कहीं ऐसा हो सकता है। मनोहर नाम तो बहुत कम लोग जानते हैं इसलिये सहज में राजकुमार हो गया।

[मनसाराम के सेक्रेटरी का प्रवेश। वह लगभग ४० वर्ष की उम्र का ऊँचा-पूरा, मोटा-ताजा आदमी है। पोशाक पश्चिमी ढङ्ग की है। उसके हाथ में एक बड़ी सी नोट-बुक है। सेक्रेटरी आकर अभिवादन कर एक कुर्सी पर बैठता है।]

मनसाराम—

हाँ, बताइए, सेक्रेटरी साहब, आज का प्रोग्राम बताइए।

सेक्रेटरी—

(नोट बुक खोल कर) ठीक ६ बजे आपने ऋषीकेश से आने वाले डेपुटेशन को समय दिया है।

मनसाराम—

अच्छा !......हाँ, आपने उस डेपुटेशन से बात की, मालूम हुआ कि वे क्या चाहते हैं ?

सेक्रेटरी—

जी हाँ, लक्ष्मण भूला मरम्मत तलब हो गयी है। उसकी मरम्मत के लिए वे चन्दा चाहते हैं।

मनसाराम—

अच्छी बात है। नौ बजे के बाद?

सेक्रेटरी—

ठीक दस बजे आपने वक्त दिया है—दक्षिण की महाजन सभा के प्रतिनिधि को।

मनसाराम—

हाँ, उनसे आपने बात की?

सेक्रेटरी—

जी, हाँ!

मनसाराम—

वे क्या चाहते हैं?

सेक्रेटरी—

वे चाहते हैं कि आप अपनी कोठी मद्रास में भी खोलें।

मनसाराम—

अच्छा, फिर?

सेक्रेटरी—

ठीक ग्यारह बजे आपसे कलकत्ते की घुड़दौड़ कमेटी के प्रेसीडेन्ट मिलेंगे।

मनसाराम—

यह साहब क्यों तशरीफ लाये हैं?

संतोष कहाँ ?]

सेक्रेटरी—

ये चाहते हैं कि पूना के सदृश कलकत्ते की घुड़दौड़ के लिए भी हम लोग अपने घोड़े रखें।

मनसाराम—

अच्छा, फिर ?

सेक्रेटरी—

ठीक १२ बजे आपने बम्बई की ह्यूमैनटेरियन-लीग के सेक्रेटरी को बुलाया है।

मनसाराम—

ये सज्जन मुझसे जीवमात्र की उन्नति के लिये चन्दा माँगने आये होंगे ?

सेक्रेटरी—

जी, हाँ !

नीतिव्रत—

तो आज उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पच्छिम चारों ही दिशाओं में कुछ न कुछ करने के प्रस्ताव हैं।

मनसाराम—

आज ही क्यों भाई, रोज ही यह हाल रहता है और अभी तो बारह बजे तक का ही प्रोग्राम हुआ। इसी से चारों दिशाएँ आ गई रात को सोते तक दसों दिशाएँ खत्म हो जायँगी। (सेक्रेटरी से)

अच्छा, फिर ?

सेक्रेटरी—

एक बजे आपको गवर्नर के लंच में गवर्नमेन्ट हाउस जाना है। वहाँ लेडी साहब भी आपके साथ जायँगी।

मनसाराम—

ठीक, फिर ?

सेक्रेटरी—

ठीक तीन बजे आपसे लिबरल फेडरेशन के असिस्टेन्ट सेक्रेटरी मिलने आवेंगे।

मनसाराम—

अच्छा, आगे ?

सेक्रेटरी—

ठीक चार बजे आपको यूनिवर्सिटी-कोर्ट की मीटिङ्ग में तशरीफ ले जाना है।

मनसाराम—

अच्छा, फिर ?

सेक्रेटरी —

ठीक पाँच बजे बैंक के डाइरेक्टर्स की मीटिङ्ग है।

मनसाराम—

खत्म हुआ या और भी कुछ है।

संतोष कहाँ ?]

सेक्रेटरी—

जी नहीं, आज का प्रोग्राम दूसरे दिनों से कुछ अधिक भारी है।

मनसाराम—

अच्छा ५ बजे के बाद भी !

सेक्रेटरी—

जी, हाँ। ठीक ६ बजे आज जमींदार एशोसिएशन की कार्यकारिणी की मीटिङ्ग है। आपको स्मरण होगा कि यह मीटिङ्ग पहले ५ बजे रखी गयी थी, पर आपकी सुविधा के लिये ही एक घन्टा आगे बढ़ा दी गयी है।

मनसाराम—

अच्छा, अब तो खत्म हुआ ?

सेक्रेटरी—

जी, बस, एक एनगेजमेन्ट और है।

मनसाराम—

किसका ?

सेक्रेटरी—

रात को ८ बजे काँग्रेस सेक्रेटरी का।

मनसाराम—

वह मुझे याद है। (कुछ रुक कर) और कुछ सामान भी आज कुछ जगहों को जाना है।

सेक्रेटरी—

जी हाँ, वह मेरी नोट बुक में लिखा हुआ है। (पतलून के जेब से एक छोटी सी नोट बुक निकाल कर उसे पढ़ते हुये) ६ घोड़े की बग्घी और कुछ कोतल घोड़े लाला रामस्वरूप के यहाँ की शादी में जायँगे। चार घोड़े की बग्घी और कुछ कोतल घोड़े लाला बैजनाथ के यहाँ के विवाह में जायँगे। चार बड़े फर्श रामलीला कमेटी को देना है। कुछ सोफे और कुर्सियाँ ब्रजमोहनलाल के यहाँ की टी-पार्टी के लिये भेजाना है। रोल्सरायल्स मोटर गवर्नर के सेक्रेटरी साहब ने माँगी है। फोअर मोटर डिप्टी-कमिश्नर साहब के यहाँ जायगी।

नीतिव्रत—

क्यों, भाई आप अकेले यह सब कर लेंगे ?

सेक्रेटरी—

जी नहीं, हरेक मुहकमे वाले करेंगे। मुझे देख भर लेना है कि सब काम कायदे से हो जाय।

मनसाराम—

अच्छा तो आप फिर ६ बजे आप ऋषीकेश के उस डेपुटेशन को बैठकखाने में लाइये। नौ बजे तक तो मैं अपने वक्त का मालिक हूँ न ?

सेक्रेटरी—

(उठते हुये) जी हाँ, ६ बजे तक कोई काम नहीं है।

संतोष कहाँ ?]

[सेक्रेटरी अभिवादन कर जाता है। मनसाराम एक दीर्घ निश्वास लेता है। नीतिव्रत इस दीर्घ निश्वास और मनसाराम की मुद्रा को ध्यान से देखता है।]

नीतिव्रत—

एक बात पूछूँ, मनसाराम ?

मनसाराम—

तुम्हें कोई बात पूछनें के पहले प्रस्तावना की जरूरत है ?

नीतिव्रत—

✓ मैं अक्सर देखता हूँ कि इतने बड़े ऐश्वर्य के रहते हुये भी तुम असन्तुष्ट से रहते हो। क्या यह सच है ?

मनसाराम—

सर्वथा सत्य है।

नीतिव्रत—

ताज्जुब की बात है।

मनसाराम—

वैसा ही ताज्जुब न जैसा मेरे महान अध्ययन से भी असन्तुष्ट रहने पर तुम्हें हुआ था।

नीतिव्रत—

(कुछ याद करते हुए) हाँ, हाँ, मुझे याद आ गया। उस समय तुम्हें पस्तकें पढ़ने की लगन थी और एक दिन तुमने मुझसे कहा था

कि उससे भी तुम्हें सन्तोष नहीं।

मनसाराम—

और तुम्हें आश्चर्य हुआ था।

नीतिव्रत—

हाँ, हुआ था, लेकिन वह उतने आश्चर्य की बात नहीं थी। उस वक्त तुम निर्धन थे, दरिद्रता की दारुण यातनाएँ सहते थे। उन यातनाओं के बीच तुम्हारा अध्ययन से भी असन्तुष्ट रहना शायद एक स्वाभाविक बात थी।

मनसाराम—

(विचार पूर्वक) नहीं, स्वाभाविक तो नहीं था, नीतिव्रत! अध्ययन और धन इनका कोई सम्बन्ध नहीं था। गरीबी के दुख रहते हुये भी अध्ययन से अध्ययन का सुख तो मिलना था। (कुछ गहराई से सोचते हुये) शायद अध्ययन का सुख मिलता भी था, पर जीवन से सन्तोष नहीं था।

नीतिव्रत—

(विचार पूर्वक) यह निर्धनता के सबब।

मनसाराम—

(उसी प्रकार विचार करते हुये) न, कदापि नहीं। पहले मैं भी ऐसा ही सोचता था, पर अगर ऐसी बात होती तो इतने ऐश्वर्य के बाद सन्तोष न होता? निर्धनता का दुख छोड़ दो, वह तो बहुत

उथली चीज थी परन्तु जीवन में जैसा गहरा असन्तोष उस वक्त था वैसा आज भी है।

नीतिव्रत—

उस समय दरिद्रता की यातनाएँ सहनी पड़ती थीं, मनसाराम ! आज हैं ऐश्वर्य के सुख।

मनसाराम—

निर्धनता की यातनाएँ जैसी उथली थीं वैसे ही ऐश्वर्य के ये सुख उथले हैं।

नीतिव्रत—

(कुछ झुँझलाकर) फिर तुम जीवन में चाहते क्या हो ?

मनसाराम—

यह मैं नहीं कह सकता, (कुछ रुक कर) लेकिन यह ऐश्वर्यशाली जीवन मुझे भार-स्वरूप होता जा रहा है। जान पड़ता है, इसमें जीवन की सत्यता नहीं।

नीतिव्रत—

(आश्चर्य के साथ) मनसाराम ! मनसाराम !! तुम्हारी जगह कोई दूसरा ''' कोई दूसरा होता तो''''''(चुप हो जाता है)।

मनसाराम—

वह बहुत सुखी होता, नीतिव्रत ! बहुत सुखी, परन्तु तुमसे सत्य कहता हूँ, मुझे इस जीवन से भी सन्तोष नहीं है। (कुछ रुक कर)

देखो, जब मैंने धन कमाना शुरू किया, तब ऐसी बात नहीं थी ।

नीतिव्रत —

(उत्सुकता से) तब तुम्हें सन्तोष था ?

मनसाराम—

(गम्भीरता से विचार करते हुए) सन्तोष था, यह तो नहीं कह सकता, पर एक अद्भुत प्रकार का···हाँ, एक अद्भुत प्रकार का हर्ष अवश्य था । जीवन का पुराना असन्तोष उस नयी घटना से दब सा गया था । धीरे धीरे वह फिर उभर आया और अब······अब तो शनैः शनैः इस जीवन से घृणा सी होती जा रही है ।

नीतिव्रत —

मनसाराम ! मनसाराम !!

[मनसाराम ध्यान में डूबा सा रहता है । कुछ देर तक वह कुछ नहीं बोलता । नीतिव्रत उसकी ओर देखता है । कुछ देर तक निस्तब्धता रहती है ।]

नीतिव्रत—

(हाथ की घड़ी देखते हुए) अच्छा, मनसाराम ! अब नहा धो, खा पीकर कालेज जाना है । रात ८ बजे तक तुम्हें काम है, ९ बजे के करीब मिलकर इस मामले पर बातें करेंगे क्योंकि तुम्हारी यह मानसिक दशा तो भयानक है···बड़ी भयानक···

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

(खड़े होते हुए) रात को ६ बजे जरूर आना और भोजन भी मेरे साथ ही करना ।

नीतिव्रत—

भोजन तो आज दूसरी जगह करना है, पर आऊँगा, अवश्य ।

[नीतिव्रत का प्रस्थान । मनसाराम इधर उधर टहलता है और टहलते टहलते एकाएक अपने आप से बात करने लगता है ।]

यह…यह मानसिक दशा…भयानक…सचमुच बड़ी भयानक है …लेकिन…लेकिन यह जीवन क्या भयानक नहीं हैं ? मनुष्य अकेला …हाँ, बिल्कुल अकेला है।…यह साथ…यह संग मेरा है नहीं, नहीं, धन…धन का । ये डेपुटेशन…ये मुलाकातें…ये खुशामदें मनसाराम ! सुना…मनसाराम !! तेरी नहीं तेरे धन की हैं ।…तू अकेला …बिल्कुल अकेला…आया अकेला…अकेला जायगा…अकेला । …और…और…रमा ?…रमा भी मेरी शायद उतनी नहीं रहीं… जितनी वह उस समय थी…जब…जब मैं निर्धन था । और…और …राजकुमार ? मनोहर…मनोहर नाम राजकुमार से कहीं अच्छा था ।…राजकुमार…राजकुमार तो निकम्मी…एकदम निकम्मी चीज होती है…उसमें मन…उसमें हृदय कहाँ रहता है । इस वैभव…इस झूठे वैभव में पलकर तो तू निकम्मा राजकुमार हो जायगा…अच्छा

मनोहर नहीं…(कुछ रुककर) जिस तरह वे पुस्तकें गईं… उसी प्रकार… हाँ, उसी प्रकार यह सम्पत्ति भी त्याज्य है। पुस्तकें तो त्याज्य नहीं थीं परिस्थिति ने उन्हें छुड़वाया लेकिन लेकिन यह सम्पत्ति… तो यह सम्पत्ति…तो…

[रमा का प्रवेश। वह अब बनारसी जरी की साड़ी पहने हैं, उसी प्रकार का सलूका है। जगमगाते हुए रत्न-जटित आभूषण हैं।]

रमा—

आज लंच में चलना है, डार्लिङ्ग !

मनसाराम—

हाँ, डियर ! परन्तु यह शायद अन्तिम लंच होगा।

रमा—

(घबड़ा कर) क्यों, क्या कोई सरकारी आपत्ति आगई ?

मनसाराम—

नहीं।

रमा—

बम्बई कलकत्ते में कोई घाटा लग गया ?

मनसाराम—

न, न।

रमा—

तो ?

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

मैंने इस सम्पत्ति को त्यागने का निश्चय किया है।

रमा—

(आश्चर्य से) सम्पत्ति को त्यागने का निश्चय !

मनसाराम—

हाँ, (रमा की ओर ध्यान पूर्वक देखते हुए, जिसके मुख से दुख के स्पष्ट भाव दिखायी दे रहे हैं) क्यों तुम्हें दुख हो रहा है ?

रमा—

(कुर्सी पर बैठते हुए) नहीं···नहीं···दुख तो नहीं,···परन्तु···परन्तु···

मनसाराम—

किन्तु परन्तु नहीं, डियर ! तुम्हें दुःख···महान दुख हो रहा है।

[रमा कोई उत्तर न देकर मनसाराम की ओर देखती है। मनसाराम रमा के निकट ही कुर्सी पर बैठ जाता है। कुछ देर निस्तब्धता रही है।]

मनसाराम—

(रमा की ओर देखते हुए) रमा ! एक बात जानती हो ?

रमा—

(भर्राये हुये स्वर से) क्या ?

मनसाराम—

इस सम्पत्ति से हम लोगों का मानसिक पतन···घोर पतन हो रहा है।

रमा—

ऐसा ?

मनसाराम—

हाँ, इस वक्त तुम्हारी हालत देखने के बाद मुझे इसमें जरा भी संदेह नहीं रहा है।

[रमा कोई उत्तर न दे मनसाराम की ओर देखती है।]

मनसाराम—

नीतिव्रत के शब्दों में हमारे पुराने घिनौने घर में रहने वाली रमा और आज इस आलीशान बंगले में रहने वाली रमा में बहुत फर्क पड़ गया है।

रमा—

(आंखों में आँसू भरकर) ऐसा ! (कुछ रुककर) पर यदि यह सच है तो इसके जिम्मेदार तुम हो। मैं तो तब भी वही करती थी जो तुम कहते थे और आज भी वही करती हूँ जो तुम कहते हो।

मनसाराम—

मैं अपनी जिम्मेदारी को मुक्तकंठ से स्वीकार करता हूँ और इसी

लिए तुमको और अपने को, दोनों को इस असत्य वायुमंडल से बाहर निकालने का मैंने निश्चय कर लिया है। इस निश्चय पर पहुँचने के लिए मेरे मस्तिष्क और हृदय में बहुत समय से युद्ध चल रहा था। तुम्हारे अभी आने के कुछ ही सेकिन्ड पूर्व मैंने यह निश्चय किया। इस निश्चय में जो कुछ भी थोड़ी बहुत कमजोरी थी, वह तुम्हारी इस वक्त की मुद्रा ने दूर कर दी।

रमा—

तो इस सम्पत्ति का अब तुम क्या करोगे ?

मनसाराम—

उसी प्रकार त्याग करूँगा, जिस तरह कुछ वर्ष पहले चित्तरंजन दास और पंडित मोती लाल नेहरू ने अपनी वकालत का त्याग किया था।

रमा—

लेकिन वकालत तो एक पेशा था, जिसे उन्होंने छोड़ा था, इस सम्पत्ति का क्या होगा ?

मनसाराम—

इसे सार्वजनिक संस्थाओं को दे दूँगा।

रमा—

और तुम ?

मनसाराम—

मैं ? मैं इस नाइटहुड के कलंक से मुक्त होकर असहयोगी बन

देश-सेवा करूँगा। (कुछ रुककर) रमा ! मैंने कांग्रेस कमेटी के सेक्रेटरी को आज रात को बुलाया है। जिस समय मैंने उन्हें बुलाया था, उस समय इतने बड़े निर्णय की उन्हें सूचना दूँगा, यह नहीं सोचा था, पर भगवान को शायद मेरे हाथ से यथार्थ में ही कुछ महान काम करवाना है।

रमा—

तुम समझते हो तुम अभी महान काम नहीं कर रहे हो ?

मनसाराम—

बिलकुल नहीं, इन सारे कामों की नींव असत्य है।

[दोनों कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

रमा—

(हिचकिचाते हुए) मैं एक बात कहूँ, नाराज तो न होगे ?

मनसाराम—

तुमसे नाराज, रमा !

रमा—

आज कल कभी कभी हो जाते हो।

मनसाराम—

(विचारते हुये) शायद इसी असत्य जीवन के कारण। लेकिन··· लेकिन आज···आज बहुत बड़ा निर्णय हो रहा है, इसलिए जो कहना

संतोष कहाँ ?]

चाहो खुले मन से कहो, रमा ! मैं कभी नाराज न होऊँगा।

रमा—

(गला साफ करते हुए) और तो कुछ नहीं···मैं··· मैं···यह सोच रही थी कि···कि राजकुमार का क्या होगा ?

मनसाराम—

(मुस्करा कर) मैं जानता था कि तुम यही बात कहोगी। रमा ! उसे तो इस असत्य वायुमंडल से, इस गंदे वातावरण से निकालना सब से ज्यादा जरूरी है। उसे बड़ा होना चाहिए, गांधी जी···के सत्याग्रह आश्रम के सदृश किसी आश्रम में, इस आलीशान बंगले में नहीं।

[दोनों एक दूसरे की ओर देखते हैं।]

तीसरा अंक

स्थान—मनसाराम के आश्रम में मनसाराम के रहने का कोठा

समय—मध्याह्न

[कोठे की दीवालों से पता लगता है कि वे ईंट चूने की न होकर कच्ची हैं। दीवालों में कुछ भद्दे से दरवाजे और खिड़कियाँ हैं। कोठे की छत के बाँस दिखायी पड़ते हैं, जिनके बीच बीच में कुछ इधर उधर हट जाने के कारण ऊपर छाये हुये खपरों के कुछ अंश दिखायी देते हैं। जमीन गोबर और मिट्टी से लिपी हुई है, परन्तु उसमें यत्र तत्र छोटे छोटे गढ़े हो गये हैं। एक ओर भद्दी सी चारपाई पड़ी है, जिस पर एक छोटा सा खादी का विस्तर है। चारपाई को छोड़ कर कोठे में और कोई फर्नीचर नहीं है। जमीन पर मोटी खादी की मैली सी एक जाजम बिछी है। इसी जाजम पर मनसाराम बैठा हुआ चरखा चला रहा है। मनसाराम के सिर के बाल मशीन कैंची से कटे हुए हैं, पर लम्बी दाढ़ी मूछें हैं। शरीर के ऊपरी भाग पर वह मैली सी मोटी खादी की एक चादर ओढ़े है और नीचे के शरीर पर मैली सी मोटी

खादी की छोटी सी धोती पहने है। मनसाराम कठिनाई से पहचाना जा सकता है। उसके मुख पर अभी भी हर्ष और संतोष के भाव नहीं हैं। मनसाराम के निकट नीतिव्रत बैठा है। उसका स्वरूप और वेषभूषा सदा के समान है, इतना ही अन्तर है कि उसका पश्चिमी ढङ्ग का सूट खादी का बना हुआ है।]

नीतिव्रत—

तो आश्रम के इस जीवन में भी तुम्हें सन्तोष नहीं है ?

मनसाराम—

(लम्बी साँस लेकर) नहीं, नीतिव्रत ! नहीं, जीवन में मुझे संतोष शायद कभी मिलेगा ही नहीं।

नीतिव्रत—

(कुछ विचारते हुए) हाँ, जान तो ऐसा ही पड़ता है—ज्ञान उपार्जन में नहीं मिला, सम्पत्ति के उपभोग में नहीं मिला और त्याग मय सेवा में भी नहीं मिल रहा है।

मनसाराम—

(कुछ विचारते हुये) इसका शायद एक कारण है, नीतिव्रत !

नीतिव्रत—

क्या ?

मनसाराम—

मेरा ज्ञानोपार्जन के समय का, साम्पत्तिक काल का और त्याग-

मय सेवा का यह जीवन—तीनों ही, सत्य नहीं थे।

नीतिव्रत—

(आश्चर्य से) अर्थात् !

मनसाराम—

(विचारते हुये) कदाचित समझा न सकूँ, पर मन में मैं यही अनुभव करता हूँ।

नीतिव्रत—

ज्ञानोपार्जन के वक्त तुमने जो सोचा था, उस विचार की उत्पत्ति तो शायद मेरे ही कहने के कारण हुई थी, साम्पत्तिक-जीवन से तुम क्यों ऊबे, यह भी मैं जानता हूँ, लेकिन हरेक अनुभव के बाद तुमने जीवन का यह रास्ता चुना था, फिर इसमें भी असंतोष, यह तो ताज्जुब की बात है।

मनसाराम—

(विचारते हुये) हरेक अनुभव के बाद !…हरेक अनुभव के बाद तो मैंने यह जीवन नहीं चुना, नीतिव्रत ! इस जीवन को चुनने के पहले मुझे इसका अनुभव कहाँ था !

नीतिव्रत—

क्यों ! वर्षों से इस तरह का जीवन देश में था, तुम जानते थे यह जीवन किस प्रकार का है।

मनसाराम—

मैंने इस जीवन के सम्बन्ध में सुना भर था, दूर से इस जीवन को देखा भी था, परन्तु…परन्तु…नीतिव्रत! किसी भी जीवन का, जब तक मनुष्य खुद उस जीवन के बीच रह कर अनुभव न करे, तब तक यह नहीं कहा जा सकता कि उसे सच्चा अनुभव है।

नीतिव्रत—

और कुछ वर्षों में जब से तुम इस जीवन में आये तुम्हें अनुभव हो गया कि यह जीवन भी ठीक नहीं है।

मनसाराम—

हाँ, (कुछ रुक कर) पहले पहल जब उस अतुल सम्पत्ति को त्याग कर मैंने इस जीवन को शुरू किया तब तो मुझे यह बड़ा अच्छा लगा। देश के कोने कोने में मेरे त्याग की प्रशंसा की बाढ़ सी आ गयी थी। पत्रों ने अपने मुख्य पृष्ठ पर बड़े बड़े शीर्षकों में मेरे त्याग का हाल छापा था। उस पर जोश से भरे अग्रलेख और टिप्पणियाँ लिखी थीं। अनेक नेताओं ने मेरे त्याग पर प्रसन्न हो, मुझे लम्बे लम्बे तार और पत्र भेजे थे, न जाने कितनों ने अपने धुँआधार भाषणों में मेरे त्याग की तारीफ की थी। यह सब तुम जानते ही हो। मुझे भी ऐसा मालूम हुआ कि मैंने अपना जीवन सार्थक कर लिया। मुझे भी सन्तोष…सन्तोष…संतोष…शायद नहीं, पर एक विचित्र प्रकार का हर्ष था। (गम्भीरता से विचार करते हुये) इस हर्ष का मिलान शायद

उस हर्ष से किया जा सकता है, जो मुझे जब मैंने धन कमाना आरम्भ किया, उस वक्त हुआ था। लेकिन…लेकिन जैसे उस नयी घटना के पुराने होते ही जीवन का असंतोष फिर से उभर आया, उसी तरह इस त्याग की नयी घटना के पुराने पड़ते ही हुआ।

नीतिव्रत—

मैंने तो पहले ही कहा था, कि सम्पत्ति का त्याग कर तुम बड़ी से बड़ी गलती कर रहे हो।

मनसाराम—

(विचार पूर्वक) उसे मैं गलती तो अब भी नहीं मानता, नीतिव्रत !

नीतिव्रत—

उसे गलती नहीं मानते और इस जीवन से भी संतोष नहीं है !

मनसाराम—

यही तो…यही तो बुरी बात है, उसे गलती मानूँ तो जैसे पहले धन कमाया था, उसी तरह शायद फिर कमा लूँ, परन्तु वह असत्य जीवन था, और आज कल का जीवन भी पाखण्ड पूर्ण है, सत्य नहीं है।

नीतिव्रत—

मनसाराम ! मनसाराम !! तुम्हारी तो विचित्र मानसिक दशा है।

मनसाराम—

है, यह मैं जानता हूँ, मैं चाहता भी हूँ कि ऐसी मानसिक हालत न रहे। कौन संतोष नहीं चाहता, नीतिव्रत ! लेकिन यह असंतोष मेरा पिंड ही नहीं छोड़ता, अब तो जान पड़ता है कि यह मेरी आत्मा के साथ लगा हुआ है। (कुछ रुककर) नीतिव्रत ! मुझे इस जीवन की भी हरेक बात से ग्लानि होती जा रही है।

नीतिव्रत—

ग्लानि !

मनसाराम—

हाँ, ग्लानि, नीतिव्रत ! ग्लानि। देखो अभी मैं चरखा चला रहा हूँ, पर मेरे हाथ भर चरखा चला रहे हैं, मुझे इसमें कोई अनुराग नहीं।

नीतिव्रत—

जिस खादी की तुमने अपने भाषणों में इतनी तारीफ की, जिसे तुम देश की आर्थिक समस्या का सच्चा हल मानते हो, उसी खादी के बनाने में तुम्हें कोई अनुराग नहीं।

मनसाराम—

खादी को मैं देश के लिए एक जरूरी चीज आज भी मानता हूँ, मैं समझता हूँ बहुत वक्त तक यह देश के लिए उपयोगी वस्तु रहेगी, लेकिन हरेक आदमी रोज सूत काते ही, इस पर मेरा विश्वास नहीं है।

नीतिव्रत—

फिर तुम क्यों कातते हो ?

मनसाराम—

क्योंकि मैं आश्रम जीवन में हूँ। इतनी ईमानदारी मुझ में है, नीतिव्रत ! कि अगर मैंने किसी जीवन को स्वीकार किया है, तो उस जीवन के बने हुए नियमों का पालन करूँगा।

नीतिव्रत—

तुम्हारी ईमानदारी पर कौन उँगली उठा सकता है।

मनसाराम—

इसी तरह मैंने भोजन के सम्बन्ध में कई तजुर्बे किये। कुछ दिनों तक पाँच चीजें खाकर देखा, कुछ दिनों तक चार, फिर तीन, फिर दो और एक तक, पर मुझे इस बात में भी कोई तथ्य न जान पड़ा।

नीतिव्रत—

खादी का तो उपयोग भी है, पर यह तो बिलकुल फिजूल चीज है।

मनसाराम—

(चारों तरफ देखकर) और देखते हो न इस कोठे को—इसकी दीवालें, इसकी छत, इसकी जमीन, इसका फर्नीचर, सारी चीजें सौंदर्य से, कला से रहित। सादगी शायद अच्छी बात है, परन्तु · परन्तु यह फूहड़ता तो नहीं।

संतोष कहाँ ?]

नीतिव्रत—

बिलकुल ठीक।

मनसाराम—

और, नीतिव्रत ! सबसे ज्यादा जिस वस्तु ने मेरे हृदय को ठेस पहुँचायी वह कौन सी चीज है, जानते हो ?

नीतिव्रत—

कौन सी ?

मनसाराम—

इस जीवन को बिताने वाले अधिकांश ऐसे है, जिनका इस जीवन की फिलासफी में विश्वास नहीं है।

नीतिव्रत—

ऐसा ?

मनसाराम—

हाँ, नीतिव्रत ! इस तरह के अनेक आश्रम मैंने देखे और उनमें रहने वाले ज्यादातर लोग मेरे ही सदृश हैं।

नीतिव्रत—

तब वे लोग इस जीवन को छोड़ क्यों नहीं देते ?

मनसाराम—

(विचार करते हुए) छोड़ क्यों नहीं देते……जीवन के जिस

रहट में मनुष्य पड़ जाता है उसे वह जल्दी नहीं छोड़ सकता… और शायद यह बात भी हो कि अधिकतर लोग जो कुछ भी कर रहे हैं, उससे अच्छा कुछ कर भी नहीं सकते।

[कुछ देर तक दोनों चुप रहते हैं। मनसाराम चरखा चलाता रहता है। नीतिव्रत सिर नीचा किये हुए कुछ सोचता है।]

नीतिव्रत—

जानते हो, मुझे सबसे अधिक दुःख किस बात का है ?

मनसाराम—

किस बात का ?

नीतिव्रत—

राजकुमार का नाम बदलकर जो गरीबदास रखा गया है।

मनसाराम—

पर इस आश्रम में राजकुमार नाम कैसे अच्छा लगता ? (मुस्कराकर) और अखबारों ने तो इस पर भी प्रशंसा के कितने अग्रलेख, कितनी टिप्पणियां लिखी थीं।

नीतिव्रत—

पर, भाई, वह लड़का इस नाम के योग्य तो नहीं है, कैसा भद्दा नाम है।

[मनसाराम हँस देता है। नीतिव्रत चुप हो जाता है। कुछ देर

संतोष कहाँ ?]

फिर निस्तब्धता रहती है।]

नीतिव्रत—

(विचार करते हुए) मनसाराम ! तुम्हें इस जीवन में भी परिवर्तन करना होगा।

मनसाराम—

(विचार पूर्वक) सोच तो मैं भी यही रहा हूँ।

नीतिव्रत—

(उत्सुकता में) ठीक······पर अब क्या करना सोच रहे हो ?

मनसाराम—

(उसी प्रकार विचार करते हुए) पक्का तो नहीं कर पाया हूँ, पर सोच रहा हूँ, अगले चुनाव में खड़े होकर प्रांतीय असेम्बली में चला जाऊँ।

नीतिव्रत—

(प्रसन्नता से) ऐसा ! मनसाराम ! यह तो बड़ा शुभ संकल्प है। (कुछ रुककर) कांग्रेस ने यद्यपि अभी मंत्री पद लेना मंजूर नहीं किया है, पर वह इन पदों को ग्रहण करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। अगर तुम असेम्बली में चले गये तो तुम्हारा मिनिस्टर होना निश्चित बात है।

मनसाराम—

तुमसे तो सभी कुछ कह सकता हूँ मैं सोचता हूँ। चरखा चलाने, एक चीज खाने और इस तरह रहने की अपेक्षा अधिकार से शायद मैं देश की ज्यादा भलाई, जनता की अधिक सेवा कर सकूँगा।

नीतिव्रत—

इसमें कोई सन्देह नहीं है। मैं तुम्हारे संपत्ति त्याग के बिलकुल खिलाफ था, परन्तु इस तरह के जीवन-परिवर्तन से सर्वथा सहमत हूँ।

मनसाराम—

(मुस्कराकर) मैं जानता था, कि तुम भी इसे पसन्द करोगे। लेकिन, नीतिव्रत ! अभी इस मामले में मैं सिर्फ सोच ही पाया हूँ, पक्का नहीं किया है।

नीतिव्रत—

मैं चाहता हूँ कि तुम इसे जल्दी से जल्दी तय कर डालो। मुझे विश्वास है कि उस जीवन से तुम्हें संतोष मिलेगा।

मनसाराम—

(विचारपूर्वक) यह तो कहना कठिन है, पर उसे भी मैं तजुर्बा करने योग्य अवश्य मानता हूँ। (कुछ रुककर) जानते हो, मुझे कभी कभी एक और विचित्र सा अनुभव होने लगता है।

नीतिव्रत—

कैसा ?

मनसाराम—

जैसे जीवन का सारा कार्यक्षेत्र कोई मिल-क्षेत्र है। मनुष्य उस व्यक्ति के समान जिसके कपड़े किसी मशीन के पट्टे में फँस गये हों और पट्टे के घूमने के साथ वह मनुष्य भी बिना इच्छा के बाध्य होकर अपने आप घूम रहा हो।

नीतिव्रत—

तुम भी विचित्र जीव हो, शायद ऐसे जीव, जो कहीं भी क्यों न हों, बलवा ही करते रहेंगे।

मनसाराम—

जो सोचते नहीं वे शायद संतुष्ट रह सकते हैं, पर जो सोचते हैं उन्हें संतोष मिलना बड़ा कठिन होता है।

[दोनों कुछ देर तक चुप रहते हैं।]

नीतिव्रत—

(खड़े होते हुए) अच्छा तो इस समय तो अब मैं चला।

मनसाराम—

(खड़े होते हुए) फिर कब आवोगे?

नीतिव्रत—

जल्दी ही आऊँगा। (मुस्कराकर) और इस बार जब आऊँगा, तब उम्मीद करता हूँ, कि तुम्हारे जीवन-परिवर्तन का निश्चय

पक्के हो जाने के खबर सुनूँगा। (जाने लगता है)

मनसाराम—

(मुस्कराते हुए) देखना है।

[नीतिव्रत जाता है। मनसाराम उसे दरवाजे तक पहुँचाकर लौटता है और फिर चरखा चलाना शुरू करता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है। फिर मनसाराम अपने आप से बात करने लगता है।]

चल · चल···जीवन···तू भी इसी चरखे···इसी चरखे के सदृश चल। (तार टूट जाता है) तेरे तार भी···इसी··प्रकार टूटते हैं। (फिर जोड़ कर चलाते हुए) और···और फिर नये नये···तरीकों से जुड़कर चलते हैं। (कुछ रुक कर) इन···इन तारों की कभी···कभी समाप्ति भी हो सकेगी ? (फिर कुछ रुक कर) परन्तु···परन्तु आश्रम निवासी कहते हैं···इन···इन तारों में सौन्दर्य···सौन्दर्य है, तेरे चलाने से···आत्मा को संतोष मिलता है···। मुझेमुझे तो न तेरे तारों में और न जीवन के तारों में कोई सौन्दर्य दिखा।···न तेरे चलाने में कोई संतोष···हुआ और न जीवन के चरखे चलाने में कोई संतोष। (कुछ रुक कर) मनसाराम! ···सुन मनसाराम! सभी पाखंड···सभी पाखंड से भरा हुआ है···क्या विश्व में असत्यता ··असत्यता का ही साम्राज्य है ? (फिर रुक कर) ओह! संतोष···संतोष कहाँ···कहाँ संतोष है ?···'यह···

संतोष कहाँ ?]

[रमा का प्रवेश । वह एक मोटी खादी की साड़ी और सलूका पहने है । हाथों में काँच की एक-एक चूड़ी को छोड़ कर शरीर पर और कोई आभूषण नहीं है । उसके मुख पर शोक का पूर्ण साम्राज्य है ।]

रमा—

गरीबदास ने तो आफत कर दी ।

मनसाराम—

क्यों ? क्या हुआ, रमा ?

रमा—

कुछ किसानों के लड़कों को बुरी तरह पीटा है ।

मनसाराम—

(लम्बी साँस लेकर) ठीक ! सच्ची अहिंसा की उसे शिक्षा ही नहीं दी जाती ।

रमा—

मेरी तो वह सुनता नहीं, आपको फुरसत नहीं और स्कूल वह भेजा नहीं जाता ।

[मनसाराम कोई उत्तर न दे सामने शून्य की ओर देखने लगता है । रमा मनसाराम की तरफ देखती है । कुछ देर निस्तब्धता रहती है ।]

रमा—

(डरते डरते) एक बात कहूँ, आप नाराज तो न होंगे ?

मनसाराम—

आश्रम में रहने के बाद कभी मैं नाराज हुआ ?

रमा—

नहीं, कभी नहीं ।

मनसाराम—

फिर तुम मुझसे इतनी डरती क्यों हो ?

रमा—

(विचारते हुए) मैं कह नहीं सकती, परन्तु···परन्तु···(चुप हो जाती है)

मनसाराम—

(प्रेम पूर्वक) कहो, रमा ! जो तुम कहना चाहो निःशंक होकर कहो ।

रमा—

जब आपने सम्पत्ति के त्याग का निश्चय किया तब आपने कहा था आलीशान बंगले के असत्य वायुमंडल, उस असत्य वातावरण से इस लड़के को निकालना सब से ज्यादा जरूरी है, इसे बड़ा होना चाहिए गान्धी जी के सत्याग्रह आश्रम के सदृश किसी आश्रम में । आपने इस आश्रम की उन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार स्थापना की है । लेकिन··· लेकिन, इस वायुमण्डल'··'इस वातावरण में तो गरीबदास बिलकुल ही

बिगड़ता जा रहा है। (कुछ रुककर) क्या मैं एक प्रार्थना करूँ ?

मनसाराम—

(लम्बी साँस लेकर) निःशंक होकर, रमा !

रमा—

आप इस बच्चे के साथ मुझे मेरे मायके भेज दीजिये। वहाँ इसे किसी अच्छे स्कूल में भरती करा इसे सुधारने की कोशिश करूँगी।

[मनसाराम कुछ न कह कर चरखा चलाना बंद कर नीचा सिर कर लेता है। रमा उसकी ओर देखती है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

मनसाराम—

(रमा की ओर देखते हुए) रमा ! एक बात मैं भी पूछूँ ?

रमा—

(मनसाराम की तरफ ही देखते देखते) यह भी पूँछने की जरूरत है ?

मनसाराम—

तुमने दरिद्रता में मेरा जैसा साथ दिया वैसा कम पत्नियाँ देंगी। मैं तुम्हारे पास आता न था, तुमसे यदा कदा बोल लेता था, अपनी किताबों में ही गड़ा रहता था, तुम्हें ऐसे ऐसे कष्ट थे कि आज भी जब उन्हें याद करता हूँ, तब काँप उठता हूँ लेकिन उस वक्त तुमने क्षणमात्र के लिए भी मुझसे विलग होने की बात न सोची। दरिद्री मनसाराम,

तुम्हारे उस समय के कष्ट का प्रधान कारण मनसाराम, तुम्हारा उस समय अधिष्ठाता देवता था। अमीरी छोड़ने में तुम्हें दुख जरूर हुआ शायद सभी को होता है, और जो निर्धनता का कष्ट पाकर धनवान होते हैं उन्हें तो कदाचित और ज्यादा, परन्तु तुमने उसे भी छोड़ दिया। उस उक्त तुम्हारे पास भी बहुत कुछ था। तुम चाहतीं तो मुझसे छिपा कर भी तुम उसे अपने कब्जे में रख सकती थीं, मुझे शायद पता भी न लगता। उस ऐश्वर्य को छोड़ने के तुम खिलाफ भी थीं। तुम्हारी सम्मति के विरुद्ध मैंने वह काम किया, लेकिन यह सब होते हुए भी तुमने ईमानदारी से मेरा साथ दिया। अपने एक एक आभूषण…ओह! मुझे याद है रमा! वे हार, वे भुजबन्द, वे कड़े, वे चूड़ियाँ, वे अंगूठियाँ और भी जाने क्या क्या, तुमने खुद ला लाकर मुझे दिये। वह दृश्य देवताओं के देखने योग्य था, सिर्फ मनुष्य के नहीं। उस सारे वैभव को लात मारकर तुम मेरे साथ एक साड़ी और सलूका पहन उस आलीशान बंगले के बाहर निकल आयीं। सौभाग्य के केवल दो चिह्न तुम्हारे शरीर पर थे—हाथ में में एक एक काँच की चूड़ी और मस्तक पर लाल टिकली। ऐसी तुम आज मेरे से विलग होने का प्रस्ताव इसलिए तो नहीं कर रही हो, कि तुम्हारा मुझ पर प्रेम कम हो गया है? (आँखों में आँसू भर आते हैं।)

रमा—

(रोते हुए मनसाराम के पैर पकड़ कर) भगवान जानता है, भगवान जानता है, यदि ऐसी बात हो तो।···परन्तु···परन्तु···गरीबदास की यह दुर्दशा मेरी सहन-शक्ति के बाहर है।···गरीबी के कारण उसकी बीमारी,···और बीमारी ही नहीं, उसकी मृत्यु भी कदाचित मैं सहन कर लेती,···राजकुमार का निर्धन गरीबदास होना भी मैंने बर्दाश्त कर लिया, लेकिन···लेकिन, आपका इकलौता बेटा गँवार रहे, वह चरित्र हीन हो जाय, यह···यह रमा की सहन शक्ति के बाहर की बात है। आपसे विलग होने का प्रस्ताव···यह···महाभयानक प्रस्ताव करने में मुझे जितना कष्ट हुआ है उतना शायद इसके पहले कभी नहीं हुआ···उस गरीबी में भी नहीं,···उस ऐश्वर्य, उस वैभव को छोड़ने में भी नहीं···परन्तु···परन्तु (फूट-फूट कर रोने लगती है)

मनसाराम—

(अपने आँसू पोंछते तथा रमा को खींचकर हृदय से लगाने के बाद) मैं समझ गया, रमा! सब कुछ समझ गया। इस तरह के जीवन का मैं खुद अन्त करना चाहता था, इसमें मुझे पाखंड और असत्यता की बू आने लगी थी, लेकिन मैंने अभी के पहले तक कोई निर्णय नहीं किया था। मेरा निर्णय हो गया, रमा! मैं इस जीवन को बदल दूँगा।

रमा—

(मनसाराम की ओर देखते हुए) फिर अब आप क्या करेंगे ?

मनसाराम—

मैं असेम्बली के लिये खड़ा होऊँगा, रमा ! शायद मिनिस्टर भी हो जाऊँ और वहाँ अधिकार का उपयोग कर जनता और देश की क्षणों में उतनी सेवा कर डालूँगा, जितनी अब तक के जीवनों की जो कार्य-प्रणालियाँ रही हैं उनसे कदाचित अनेक जन्मों में न कर सकता। (कुछ रुक कर) और एक काम करूँगा—(रमा कोई उत्तर न दे प्रश्न सूचक दृष्टि से केवल मनसाराम के मुख की ओर देखती है।) बच्चे की शिक्षा की अच्छी से अच्छी व्यवस्था……

चौथा अंक

स्थान—मिनिस्टर मनसाराम के बँगले में उसका दफ़्तर
समय—तीसरा पहर

[आज कल के शानदार दफ्तरों के सदृश सजा हुआ दफ्तर है। घूमने वाली कुर्सी पर मनसाराम बैठा है। उसके सिर के बाल फिर बढ़ गये हैं और अच्छी तरह संवारे हुए हैं, पर दाढ़ी मूछें अब मुड़ गयी हैं। वह खादी की शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा पहने है। उसके सामने की एक कुर्सी पर नीतिव्रत बैठा है। वह अपनी साधारण वेषभूषा में है।]

नीतिव्रत—

दो ही साल में इस जीवन से भी छुट्टी लेने का विचार, मनसाराम ! तुम्हारा जीवन ही मेरी समझ में नहीं आता।

मनसाराम—

(टेबिल पर रखे हुए एक कागज को देखते देखते) मेरा जीवन तुम्हारी क्या चाहे मेरी खुद की समझ में न आवे, पर इस जीवन से

छुट्टी लेने की बात तो किसी मूर्ख आदमी की समझ में भी आ सकती है, फिर तुम तो आज वर्षों से प्रोफेसर हो, न जाने कितनी बड़ी बड़ी बातें दूसरों को समझाते हो।

नीतिव्रत—

तुम्हारी अड़चने, तुम्हारे कष्ट मैं जानता हूँ, मनासाराम ! लेकिन अड़चनों और कष्टों का सामना करना यही तो जीवन है, दो ही वर्षों में इस तरह घबड़ाकर किसी चीज को छोड़ देना······

मनसाराम—

दो ही वर्ष ! (नीतिव्रत की ओर देखकर) इन दो वर्षों में पहले शुरू के छै महीनों को छोड़कर बाकी डेढ़ साल तो मैंने डेढ़ युग के समान बिताया है, नीतिव्रत ! आज दो वर्ष पूरे होते हैं, और इन दो वर्षों में मिनिस्टर की हैसियत से मुझे कितनी सफलताएँ और कितनी असफलताएँ मिलीं, उनका मैंने आज ही नोट बनाया है। सारे नोट को बार बार पढ़ने और विचार करने पर जानते हो मैं किस नतीजे पर पहुँचा हूँ ?

नीतिव्रत—

किस नतीजे पर ?

मनसाराम—

सफलता के सम्बन्ध में एक बड़ा भारी सुन्न है और असफलताओं पर एक पुराण या महाभारत के सदृश कोई महान ग्रन्थ लिखा जा सकता है।

नीतिव्रत—

यह तुम्हारी बड़ी जबरदस्ती है। तुम्हारा यह मत कोई न मानेगा कि काँग्रेस मिनिस्ट्री को किसी काम में भी सफलता नहीं मिली।

मनसाराम—

नीतिव्रत ! सफलता असफलता, अँग्रेजी में जिसे रिलेटिव कहते हैं, वह चीज है। ये बातें सदा संकल्प पर निर्भर रहती हैं। संस्था या मनुष्य जिस कार्य को जिस विधि से करने का संकल्प करते हैं, उसे देखना चाहिए, यह बात जानने के लिए कि सफलता मिली है या असफलता। काँग्रेस असेंबलियों में वर्तमान राजविधान तोड़ने या राम-राज्य स्थापित करने गयी थी। दोनों बातें न हुईं। मैं गया था अधिकार द्वारा क्षणमात्र में ऐसी ऐसी सेवाएँ करने जो इसके पहले के अपने जीवनों की कार्य प्रणालियों से मेरी उस समय की समझ के अनुसार मैं अनेक जन्मों में करने में सफल न होता।

नीतिव्रत—

संकल्प ही गलत था।

मनसाराम—

पर अपना संकल्प तो मैंने उसी वक्त तुम्हें सुनाया था, उस समय तुमने यह बात न कही।

नीतिव्रत—

मुझे भी उस वक्त इस जीवन का अनुभव कहाँ था ?

मनसोराम—

ठीक, पर इससे संकल्प गलत तो सिद्ध नहीं हुआ। इससे तो यह सिद्ध हुआ कि उस संकल्प की पूर्ति के लिए कार्य की जिस विधि को मैंने चुना था, वह ठीक नहीं निकली। अगर ऐसी बात है, तो मुझे इसको छोड़ देना चाहिए।

नीतिव्रत—

(झुँझलाकर) मनसाराम ! मनसाराम !! जीवन के प्रातःकाल में एक, मध्याह्न में दूसरी, अपराह्न में तीसरी, सायंकाल में चौथी, रात्रि में पाँचवीं बातें सोचते जाना, इस तरह जीवन में एक एक काम लेते और उससे असंतुष्ट होकर उसे छोड़ते जाना, अपने सारे जीवन को असफल बनाने का सबसे अच्छा तरीका है।

मनसाराम—

लेकिन किसी उद्देश्य से किसी कार्य का संकल्प करने के बाद वह कार्य करने पर अगर यह सिद्ध हो जाय कि उस उद्देश्य की सफलता उस कार्य से नहीं हो सकती और तब भी उस काम को न छोड़ कर उसी को करते रहना तो जीवन को सफल बनाने के लिए नये रास्तों के अनुसन्धान करने के दरवाजों को भी बंद कर देना है। फिर मेरी तो ऐसी विचित्र इच्छा शक्ति है कि उसे मार्ग परिवर्तन में थोड़ी भी हिच-किचाहट नहीं होती। (कुछ रुककर) इच्छा शक्ति को कोई नहीं रोक

सकता। हवा किस दरख्त की ऊँची से ऊँची टहनी को नहीं छू सकती ! मैं तो किसी भी नये रास्ते के लिए ताकता सा बैठा रहता हूँ। (फिर टेबिल पर रखे हुए कागज को देखते देखते कुछ ठहरकर) नीतिव्रत ! इन दो सालों में हम अपने कार्य में क्यों सफल न हो सके इसके कारण सुनोगे ?

नीतिव्रत—

तुम्हारी ऐसी कौन सी बात है जिसे मैं सुनने के लिए उत्सुक नहीं रहता। इस मामले में बीच बीच में तुमसे बहुत कुछ सुनता भी रहा हूँ।

मनसाराम—

हाँ, पर आज तो मैंने इन दो वर्षों के पूरे काम पर एक नोट तैयार किया है।

नीतिव्रत—

उसे भी जरूर सुनूँगा।

मनसाराम—

देखो, नीतिव्रत ! एक वाक्य में हम इस स्थान पर आये थे जनता की सेवा करने। वह सेवा क्यों नहीं हुई, उसके कारण मैं बताता हूँ।

नीतिव्रत—

हुई क्यों नहीं, शायद उतनी नहीं हुई जितनी तुम करना चाहते थे।

मनसाराम—

ऐसा सही किन्तु इससे जो कुछ मैं तुम्हें कहना चाहता हूँ, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। (कुछ रुककर) नीतिव्रत! अधिकार द्वारा यह सेवा तब हो सकती थी जब हम कुछ अच्छे अच्छे कानून पास करते और वे कानून व्यवहार में लाये जाते।

नीतिव्रत—

कुछ बड़े अच्छे अच्छे कानून तुम लोगों ने पास भी किये।

मनसाराम—

लेकिन, नीतिव्रत! बहुत ही साधारण, ऊपरी बातों से सम्बन्ध रखने वाले। जो समाज में बुनियादी परिवर्तन कर सकते थे ऐसे कानूनों को छूने में भी हम भयभीत रहे।

नीतिव्रत—

उन्हें तुम वर्तमान राज्य विधान के अनुसार छू ही नहीं सकते थे।

मनसाराम—

कुछ दूर तक यह भी सत्य है, लेकिन कुछ ऐसी भी बातें भी थीं, जो इस विधान के रहते हुए भी हम हाथ में ले सकते थे। एक ही दृष्टान्त देता हूँ हम चाहते तो जमींदारी प्रथा का, कम से कम अपने प्रान्त में, सर्वथा अन्त कर सकते थे।

नीतिव्रत—

इस राज्य-विधान में!

मनसाराम—

बेशक, पर हमारी हिम्मत नहीं हुई। हम दूसरे दलों के प्रतिनिधियों से डरे इतना ही नहीं, ऐसी बातों के लिए हमारी पार्टी का ही बहुमत हमारे साथ न था।

नीतिव्रत—

अच्छा !

मनसाराम—

जमींदारी प्रथा का मैंने तुम्हें दृष्टान्त भर दिया है। इस तरह की अनेक बातें इस विधान के अन्तर्गत ही की जा सकती थीं, पर उन्हें करने के लिए जिस मजबूती की हमें जरूरत थी, वह हममें न थी। (कुछ रुककर) इस प्रकार हमारे कार्यों की नींव ही ठीक न रही।

नीतिव्रत—

अच्छा आगे ?

मनसाराम—

हमारे मातहतों, सरकारी नौकरियों से हमें कोई सच्चा सहयोग न मिला। वे समझते थे काँग्रेस मिनिस्टरी एक क्षणिक चीज है। आज आ गयी है, कल चली जायगी।

नीतिव्रत—

यह उनकी समझ ठीक ही थी। आप जाने की बात सोच ही रहे हैं।

मनसाराम—

(कुछ मुस्करा कर) अच्छा, सुनो तो उनके सहयोग के बिना हम अकेले प्रान्तीय राजधानियों में बैठे-बैठे क्या कर सकते थे ? यहाँ भी एक ही दृष्टान्त देता हूँ—किसानों पर वसूली के लिए सख्ती न की जाय और इसी तरह के जाने कितने हुक्म हम निकालते, लेकिन उन्हें डिविजन के कमिश्नर, जिले के डिप्टी कमिश्नर और कलेक्टर, तहसीलों के तहसीलदार इत्यादि कभी नहीं मानते ।

नीतिव्रत—

और इतने पर भी उन्हें कोई सजा नहीं दी जाती ?

मनसाराम—

जब सबके सब एक से ही हों, तब सजा किस किस को दी जाय ? (कुछ रुककर) अगर हमारे असेम्बली के मेम्बरान निस्वार्थी और सतर्क होते तो इन लोगों के द्वारा जिले के अफसरों पर कन्ट्रोल रखने की कोशिश की जा सकती थी; पर इनमें से भी अधिकांश को अपनी अपनी पड़ी है । कोई अपनी म्युनिसिपैलिटी का प्रेसीडेन्ट होना चाहता है तो कोई अपनी डिस्ट्रिक्ट कौंसिल का चेयरमैन । कोई अपने रिश्तेदार, कोई अपने मित्र को इन स्थानीय संस्थाओं के नामजद मेम्बर बनवा देने के लिए फिक्रमन्द रहते हैं तो कोई पबलिक प्रसी-क्यूटरी के पीछे घूमते हैं । किसी को अपने भाई भतीजों को नौकरी

संतोष कहाँ ?]

दिलाने की पड़ी रहती है, तो किसी को अन्य ऐसी ही अन्य छोटी-छोटी चीजों की।

नीतिव्रत—

और ठेकों के पीछे कम लोग पड़े हैं ? कई मेम्बरान के खानों के लाइसेंस और भिन्न-भिन्न तरह के सरकारी ठेके अपने मित्रों और नातेदारों को दिलाने की कोशिशों की ख़बरें तो हमारे कालेज तक पहुँच चुकी हैं।

मनसाराम—

हाँ, यह भी हुआ है।

नीतिव्रत—

और यह भी सुना है कि इन कामों में इन लोगों ने बड़ी-बड़ी रकमें रिश्वत में ली हैं।

मनसाराम—

सो तो मैं नहीं जानता, और मैं समझता हूँ कि यह बात सही भी नहीं है, पर इस तरह के कामों में हमारे अनेक मेम्बरों को बड़ी दिलचस्पी रही और है, इसमें सन्देह नहीं।

नीतिव्रत—

अरे, भाई ! अपने रिश्तेदारों और मित्रों का फायदा करा देना क्या छोटी रिश्वत है।

मनसाराम—

(कुछ ठहर कर) मेरे कहने का मतलब यह है कि इन हमारे मेम्बरान के द्वारा हम सरकारी नौकरों को कन्ट्रोल नहीं कर सके और कहीं कोशिश भी की तो सिवा इसके कि इन महाशयों ने इन नौकरों पर अपना रोब गाँठ यह बताया है कि हम मिनिस्टर से तुम्हारा नुकसान करवा सकते हैं और कुछ नहीं किया।

नीतिव्रत—

इसमें शक नहीं कि तुम्हारी पार्टी के भी अधिकांश सदस्य ठीक नहीं निकले और यह भी पार्टी में बेहद शिस्त रहते हुए।

मनसाराम—

पर, भाई ! किया क्या जाय ? जैसे लोग देश में हैं वैसे ही तो असेम्बली में भी आयेंगे। (कुछ रुक कर) फिर सार्वजनिक माँगे इतनी, जिसका ठिकाना नहीं। लोग चाहते हैं बहुत से काम किये जायँ, हर संस्था कुछ न कुछ चाहती है। नया टैक्स ग़रीबों पर हम लगा नहीं सकते। बड़े-बड़े ख़र्चों को घटाने का अधिकार भी नहीं। (कुछ रुक कर) जिसे न दो वही नाराज़। एक न्यूज़ ऐजेन्सी सहायता माँगती थी, न दी जा सकी तो उसने मिनिस्ट्री के ख़िलाफ़ सच्चा झूठा सब तरह का प्रचार शुरू कर दिया। एक अख़बार सरकारी विज्ञापन माँगता था, न दे सके तो उसके सम्पादक ने भी अपनी क़लम चलाना आरम्भ किया।

नीतिव्रत—

भगवान इन अख़बार वालों से बचाये ।

मनसाराम—

फिर मुसलमानों ने ज़बरदस्ती हम लोगों को बदनाम करने की कोशिश की, यथार्थ में इसलिए नहीं कि हम साम्प्रदायिक मामले में पूर्णरूप से तटस्थ न रहें; वे इसे अपने मन में अच्छी तरह जानते हैं कि हमने कभी साम्प्रदायिक तरफ़दारी नहीं की, पर इसलिए कि हमने मुसलिम लीग से समझौता कर उनके मेम्बरों को कैबिनट में लेकर संयुक्त मिनिस्ट्री नहीं बनायी ।

नीतिव्रत—

ये मुसलमान···ये मुसलमान···सच तो यह हैं कि इन्हीं के कारण देश स्वतन्त्र नहीं हो रहा हैं ।

मनसाराम—

भाई ! असल सवाल मुसलमान हिन्दू का नहीं हैं, प्रश्न है स्वार्थ-सिद्धि का। अकेले मुसलमानों ने हमारे ख़िलाफ़ प्रचार थोड़े ही किया, हिन्दुओं ने भी किया। यों तो मुसलमान कहते हैं हम अपने हकों के लिए लड़ रहे हैं और हिन्दू कहते हैं हम अपने स्वार्थों के लिए, पर काँग्रेस कों बदनाम करने के लिए दोनों का सहयोग हो जाता है; वहाँ अलग अलग अधिकारों का प्रश्न नहीं रह जाता; इन लोगों के साथ वे लोग और

मिल गये हैं जिन्हें या तो हमने गये चुनावों में हराया था, या किसी कारण भी जिनके स्वार्थ हमारे कारण सध नहीं सकते।

नीतिव्रत—

(विचारते हुए) हाँ, भाई ! यह तो ठीक कहते हो।

मनसाराम—

फिर कुछ ताज्जुब की बातें और देखो।

नीतिव्रत—

कौन सी ?

मनसाराम—

काँग्रेस को बुरी से बुरी गालियाँ देने पर भी इनमें से कई महानुभाव हमारी शिकायतें भेजते हैं काँग्रेस कार्यकारिणी को; और वह भी इन शिकायतों पर गौर फर्मा कर रोज़ ही हम से कैफ़ियत तलब करती हैं। (कुछ ठहरकर) काग्रेस में एक बाम मार्ग भी निकल आया है। उसका धर्म ही है कि अपने मिनिस्टरों को गालियाँ देना। वे जानते हैं न कि हम लोग उन्हें जेल न भेजेंगे। दूसरी मिनिस्टरियाँ होतीं तो शायद ये बाममार्गी इतनी उछल कूद न मचाते। (कुछ रुककर) नीतिव्रत ! एक बात और जानते हो ?

नीतिव्रत—

क्या ?

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

इस समय इस देश की राजनीति में जिन्हें महानता या विशेषता प्राप्त है, यह उनके किसी महान या विशिष्ट गुण के कारण नहीं, पर दूसरों की कमज़ोरियों और दुर्गुणों के कारण। अपने-अपने नाम और कीर्ति के सिवा किसी को किसी की चिन्ता नहीं। पर इतिहास में उनको जो स्थान मिलेगा वह इतना छोटा होगा कि उसका पता लगाने के लिये तेज से तेज माइक्रासकोप की ज़रूरत होगी। फिर इस समय मिनिस्ट्री के लिए तो ऐसे व्यक्तियों की ज़रूरत है, जिनके हृदय का सारा पानी सूख कर वहाँ मरुस्थल हो गया हो, भावनाओं की लताओं से सर्वथा शून्य। (कुछ रुककर) और मैं तो डरपोंक मिनिस्टर समझा जाता हूँ, शायद इसलिए कि दलबन्दी को मज़बूत करने के लिए मैं कोई भी रास्ता पकड़ने को तैयार नहीं।

[नीतिव्रत कुछ नहीं बोलता। कुछ देर तक दोनों चुप रहते हैं।]

मनसाराम—

और किसी का विश्वास किया नहीं जा सकता, नीतिवत ! किसका विश्वास करूँ, पार्टी के इन मेम्बरों का, सरकारी नौकरों का, या जनता का, जो समझती है कि हम यहाँ अपने स्वार्थ से बैठे हैं ? अपने और पराये सब एक टक देख रहे हैं कि हम गिरते कैसे हैं ? कभी गिरने लगे तो शायद पहला धक्का देगा हमारा सेक्रेटरी। (कुछ रुककर) और जनता की सेवा हमने क्या की ? (एक कागज़

पर कलम उठाकर एक बड़ा शून्य बना तथा उसे नीतिव्रत को बताते हुए) यह। (कुछ रुककर) नीतिव्रत ! यहाँ बड़ी अच्छी खेती हो रही है। षड्यंत्र का बीज बो-बोकर शापों की फ़सल कट रही है। बड़ा अच्छा रोज़गार हो रहा है। दल बन्दी की पूँजी लग-लग कर अधःपतन का मुनाफ़ा हो रहा है। यहाँ का सारा जीवन असत्य है, सर्वथा असत्य ! सारा वायुमंडल ऐसा ज़हरीला है कि अब तो एक-एक साँस पर मेरा दम घुटता है।

नीतिव्रत—

तो इसे छोड़कर अब क्या करोगे ?

[मनसाराम सिर झुका कुछ देर चुप रहकर विचार करने लगता है। नीतिव्रत एक टक उसकी ओर देखता है]

मनसाराम—

(सिर उठाते हुए) यद्यपि इस जगह अब मेरा रहना बहुत ही कठिन मालूम पड़ता है, लेकिन अब तक स्तीफ़ा देने का निर्णय नहीं किया है। (कुछ रुककर) यदि स्तीफ़ा दिया भी तो अब क्या करूँगा इस सम्बन्ध में तो कुछ भी नहीं सोचा। (कुछ रुककर) सोचकर तो बहुत सी बातें की, नीतिव्रत ! किसी में भी सफलता, किसी में भी सन्तोष न मिला। हर चीज़ के शुरू में थोड़ा सा सतोष···सन्तोष क्या एक प्रकार की शान्ति मिल जाती है। मिनिस्टर होने पर भी मिली थी। शायद उन बड़े-बड़े संकल्पों के कारण या बड़े-बड़े स्वागतों

और मानपत्रों के सबब, पर थोड़े ही दिन बाद वह पुराना असन्तोष, वह जीवन का···कदाचित् आत्मा का असन्तोष फिर उभर आया। जीवन-समस्या मेरे लिए उस खोटे सिक्के के सदृश्य सिद्ध हुई है जो लौट-लौटकर आ जाता है। मालूम नहीं यह जीवनरूपी पतंग समस्याओं के कितने दीपकों के चारों ओर घूमती रहेगी। पर एक बात ज़रूर है, नीतिव्रत!

नीतिव्रत—

क्या ?

मनसाराम—

मुझे चाहे असफलता पर असफलता मिली हो, असंतोष पर असन्तोष हुआ हो, लेकिन अभी भी आशा और विश्वास का प्रेम मैं नहीं खो सका हूँ। हाँ, इस बार एक बात तय की है।

नीतिव्रत—

कौन सी ?

मनसाराम—

यदि यह मिनिस्टरी छोड़ी तो इस बार···इस बार, नीतिव्रत !··· (चुपहो जाता है।)

नीतिव्रत—

इस बार ?

मनसाराम—

(गम्भीरता से विचारते हुए) इस बार बिना कोई कार्यक्रम बनाये, बिना कुछ सोचे, बिना विचारे, बिना किसी निश्चय के जीवन की धारा में सेवा के हाथ मारकर तैरते हुए बढ़ूँगा···बढ़ूँगा, पार लगा तो भी पार है, डूब गया तो भी...तो भी पार। ..और ..और...

[रमा का प्रवेश। वह खादी की रंगीन साड़ी और सलूका पहने है। थोड़े से आभूषण भी धारण किये है। उसके मुख पर अत्यधिक उद्विग्नता के भाव हैं। वह इस प्रकार आती है कि उसकी पीठ नीतिव्रत की ओर रहने के कारण नीतिव्रत उसे दिखायी नहीं पड़ता।]

रमा—

आपके जो ये एम० एल० ए० साहब आये हैं, इन्होंने तो नाकों दम कर डाला। ड्राइवर को आने में थोड़ी सी देर हो गयी, उसे न जाने कितनी गालियाँ मिली। नौकर चाय लेकर गया, मैंने स्वयं चाय बना कर भेजी थी, नाश्ता भी था, उसे वह चाय ठण्डी मालूम पड़ी और टेबिल पर ऐसी लात मारी कि चाय और नाश्ते से केवल कालीन खराब हुआ, इतना ही नहीं, नया का नया चाय-सेट भी फूट गया। मेरी तो इन बेबुलाये मेहमानों के मारे नाकों दम हो गयी। पच्चीस पचास लड़कियाँ होतीं और बुरे से बुरे दामाद मिलते तो भी शायद इतनी आफ़त न होती। इन एम० एल० ए० दामादों के मारे तो......

संतोष कहाँ ?]

नीतिव्रत—

बैठो, बैठो, भाभी ! आज तो तुम इतनी उत्तेजित हो जितना मैंने तुम्हें देखा ही नहीं।

[नीतिव्रत की आवाज सुनकर रमा चौंक पड़ती है। मनसाराम एक रूखी हँसी हँसता है।]

मनसाराम—

(रमा से) बैठो, रमा ! बैठो। शायद बहुत दिन तुम्हें यह आफ़त अब न भोगनी पड़ेगी।

रमा—

(एक कुर्सी पर बैठते हुए, सहम कर) नहीं, आफ़त तो कुछ नहीं, पर··

[गरीबदास, जिसका नाम अब स्वराजचन्द्र हो गया है, जल्दी से आता है। उसकी उम्र करीब १३, १४ वर्ष की हैं। वह गौर वर्ण का दुबला-पतला किन्तु ऊँचा और सुन्दर लड़का है। खादी का कोट और निकर पहने है।]

नीतिव्रत—

स्वराजचन्द्र ! अच्छा, स्कूल से आ रहे हो ?

स्वराजचन्द्र—

जी हाँ, चाचा जी !

(नीतिव्रत और रमा के बीच की खाली कुर्सी पर बैठते हुए, मनसाराम से) बाबू जी ! स्कूल में मैंने सुना है कि आपको बहुत सा रुपया मिला है ?

मनसाराम—

(आश्चर्य से) मुझे ? कहाँ से ? किसी सट्टे फाटके में, लाटरी में, या दफीने से ?

स्वराजचन्द्र—

नहीं, बाबू जी ! कुछ लड़के कहते थे कि आपने कुछ ठेकेदारों को सरकारी ठेके दिये हैं और उन्होंने आपको लाखों रुपया प्रजेंट किया है।

[मनसाराम कोई उत्तर नहीं देता। वह एक कागज़ उठाकर उस पर कुछ लिखता है। तीनों एक टक मनसाराम की ओर देखते हैं। मनसाराम इस कागज को लिफ़ाफ़े में बन्द कर लिफ़ाफ़े पर भी कुछ लिखता है। इतनी देर तक निस्तब्धता रहती है।]

मनसाराम—

(नीतिव्रत से) नीतिव्रत ! कुछ थोड़ा सा कष्ट उठाकर एक काम करोगे ?

नीतिव्रत—

जो कहो।

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

मेरी गाड़ी लेलो (उस लिफ़ाफ़े को नीतिव्रत को देते हुये) यह कैबिनिट से मेरा त्यागपत्र है। इसे ले जाकर प्रीमियर को दे आओ।

[नीतिव्रत बिना एक शब्द कहे लिफ़ाफ़ा लेकर जाता है। मनसाराम बड़े जोर से कहकहा लगाता है। रमा हर्षित मुद्रा से मनसाराम की ओर देखती है, स्वराजचन्द्र आश्चर्य से कभी पिता और कभी माता की तरफ।]

पाँचवां अंक

स्थान—मनसाराम का उद्यान

समय—सन्ध्या

[सामने की ओर दूर पर एक छोटा सा किन्तु सुन्दर बँगले के बाहरी भाग का कुछ हिस्सा दिखलायी देता है। बँगले में इतने रंगों का अद्भुत मिश्रण है कि आँखें कुछ देर तक उसे देखना चाहती हैं। बँगले के सामने छोटा-सा दूब का मैदान है, जिसमें हरी घास के सिवा यत्र तत्र सुन्दर पुष्पों की क्यारियाँ हैं। विविध रंग के पुष्पों के सिवा बड़े-बड़े गुलाब के फूले हुए वृक्षों की बहुतायत है। मैदान के बीच में एक छोटा-सा कुण्ड है। इसमें गुलाबी कमल खिले हैं। कुण्ड के दोनों ओर दो लता मंडप बने हैं दोनों पर चमेली की बेल चढ़ी है और चमेली के श्वेत पुष्प नेत्रों को बड़े भले मालूम होते हैं। मैदान के दोनों ओर याने बँगले तक जाने के लिए दो सड़कें हैं। इन सड़कों के बाद दोनों ओर दूर-दूर तक अनेक प्रकार के फलों के वृक्ष हैं। इनमें आम, संतरे, केले और पपीते के दरख्तों की अधिकता है। आम केले

और पपीते के पेड़ खूब फले हुए हैं। उद्यान पर वसन्त का पूर्ण साम्राज्य छाया हुआ है। मन्द-मन्द चलती हुई वायु में कभी-कभी एकाध जोर का झोंका आ जाता है, जिससे उद्यान के वृक्षों की टहनियों पत्तों फूलों और फलों में एक कंप-सा दिखायी पड़ता है। कभी-कभी कोयल की कूक भी सुन पड़ती है। चमेली के एक लता मंडप में एक लकड़ी का सुन्दर तख्त रखा हुआ है। तख्त पर खादी की रंगबिरंगी बिछावन है। इस पर मनसाराम बैठा है। उसके सामने लकड़ी का एक सुन्दर डेस्क है और उसी पर कुछ कागज रखे हुए हैं। वह कुछ लिख रहा है। उसके पास इधर-उधर कुछ पुस्तकें रखी हैं। मनसाराम के सिर के बाल यद्यपि सँवारे हुए हैं पर यत्र तत्र कुछ सफ़ेद हो गये हैं। छोटी-छोटी मूछों में भी कोई-कोई सफ़ेद बाल आ गया है। मनसाराम लम्बा-सा खादी का एक कुरता और खादी की ही एक धोती पहने हुए है। दोनो वस्त्र सफ़ेद और अत्यन्त स्वच्छ हैं। कुछ देर वह लिखने में मग्न रहता है। मनसाराम लिखना पूरा कर ज्योंही अपनी कलम रखता है त्योंही एक तरफ की सड़क पर से चार आदमी खादी के वस्त्र पहने अपने-अपने सिरों पर एक-एक बड़ा-सा टोकना रखे, जाते हुए दिखायी पड़ते हैं। मनसाराम की दृष्टि इन लोगों पर पड़ जाती है।]

मनसाराम—

(जोर से) कौन ? ब्रजभूषण !

[पहला आदमी और उसके पीछे पीछे जाने वाले व्यक्ति रुक जाते हैं।]

व्रजभूषण—

(आगे बढ़कर) जी, पिता जी !

मनसाराम—

(चारों व्यक्तियों की तरफ देख कर) डाली जा रही है ? कहाँ ले जा रहे हो ?

व्रजभूषण—

लड़कों के बोर्डिङ्ग, अनाथालय और अस्पताल की डालियाँ हैं, पिता जी !

मनसाराम—

देखें, कैसी चीजें पैदा हुई हैं ?

[चारो व्यक्ति मैदान में आते हैं और टोकनों को नीचे रख कर उनका सामान मनसाराम को बताते हैं। टोकनों में विविध प्रकार का सुन्दर साग भाजी है।]

मनसाराम—

(खड़े होकर सामान देखते हुए) चीजें तो बहुत अच्छी हैं, व्रजभूषण ! इधर कुछ लिखने-पढ़ने में लगे रहने के कारण मैं बगीचा देख ही न सका। अब अपने दोनों बोर्डिङ्गों, अनाथालय और अस्पताल के लिए काफी साग भाजी हो जाती है ?

व्रजभूषण—

जी, पिता जी ! मोल कुछ भी नहीं आता, और साग भाजी ही क्या, इस साल तो गेहूँ, चावल, अरहर इत्यादि भी सब अपने ही फार्म से

अपनी संस्थाओं को मिलेगी। बरहाई भी बड़ी अच्छी हुई है, गुड़ भी होगा।

मनसाराम—

सचमुच तुम लोगों ने बड़ी उन्नति की।

व्रजभूषण—

सब आपके और माता जी के कारण हुआ है, पिता जी!

मनसाराम—

(कुछ ठहर कर) अच्छा जा सकते हो।

[चारों अपना अपना टोकना उठाकर रवाना होते हैं। मनसाराम इधर उधर घूम कर फलों को देखता है। दूसरी सड़क पर से रमा का प्रवेश। वह भी खादी के ही वस्त्र धारण किये है, परन्तु वस्त्र अत्यन्त सुन्दर हैं, उसके मुख पर प्रसन्नता का साम्राज्य है।]

रमा—

(निकट आते हुए) आज नदी के किनारे पर दो बच्चे मिले।

मनसाराम—

दो!

रमा—

हाँ, दो। हमारे बाल-भवन खुलने की बात कदाचित् बहुत फैल गयी है। कुछ अभागिनी माताएँ अपने-अपने बच्चों को छोड़-छोड़ कर चली जाती हैं।

मनसाराम—

(लम्बी साँस लेकर) समाज का यह पाप ! क्या कहूँ ?

[दोनों पुष्पों को देखते हुए इधर उधर घूमते हैं ।]

मनसाराम—

आज मैंने अपना वह नाटक समाप्त कर दिया ।

रमा—

अच्छा, वह समाप्त हो गया ?

मनसाराम—

हाँ, अभी अभी किया है । अब कुछ दिन तक मैं बाहिरी काम देखूँगा, तुम इसे पढ़कर इस पर विचार करो, और अगर कोई सुधार सूझे, तो मुझे सुझाओ ।

रमा—

अच्छी बात है । बाल भवन को छोड़कर स्कूल, दोनों बोर्डिङ्ग हाउस, अनाथालय, अस्पताल और खेती तथा बगीचा आप देख सकते हैं ।

मनसाराम—

(मुस्कराकर) और बालभवन मेरे सिपुर्द नहीं किया जा सकता ?

रमा—

(मुस्कराते हुए) वह तो,......वह तो......

[मनसाराम हँस पड़ता है । कुछ देर तक दोनों घूमते रहते हैं ।]

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

अब और क्या क्या आरम्भ करना है ? ये संस्थाएँ ठीक ढङ्ग से चलने लगीं। फार्म को देख-देखकर किसान खेती की उन्नति कर ही रहे हैं। कागज बनाने की और इसी तरह और भी छोटी छोटी काटेज इनडस्ट्रीज भी चलने लगी हैं। कपड़ा भी लोग चरखों और करघों से बनाकर पहनते और स्वावलम्बी होते जाते हैं। (कुछ रुककर) हाँ, लिखने में मग्न रहने के कारण मैंने कुछ दिनों से चरखा नहीं चलाया।

रमा—

ले आती हूँ।

मनसाराम—

फिर वही बात ! हमेशा पति की सेवा-वृत्ति ! अपना चरखा मैं ख़ुद लाऊँगा। (बँगले की ओर जाते हुए) दासी के सदृश तुम क्यों·····

[रमा हँस देती है। मनसाराम बँगले में जाता है। रमा इधर उधर घूमती और पुष्पों को देखती रहती है। मनसाराम लौटकर आता और तख्त पर बैठता है। रमा भी उसके निकट बैठती है। मनसाराम चरखा खोल उसे चलाना आरम्भ करता है।]

मनसाराम—

हाँ, तो फिर अब कौन कौन सी संस्था शुरू करना चाहिए ?

रमा—

अब मनोहर की पढ़ाई ख़त्म हो जाने के बाद, उसका विवाह कर तब आगे बढ़ेंगे। दो और प्राणी हो जायँ।

मनसाराम—

(चरखा चलाते-चलाते विचार करते हुए) ऐसा ? (कुछ रुककर) बी० ए० का नतीजा तो उसका कल निकल ही आयगा। दो साल उसे और लगेंगे।

रमा—

तब तक अब तक का कुल कार्य पूर्णरूप से व्यवस्थित हो जायगा।

[एक सड़क से जल्दी-जल्दी नीतिव्रत के साथ मनोहर आता है। नीतिव्रत के बाल भी कुछ सफ़ेद हो गये हैं। उसकी वेषभूषा आदि वैसी ही हैं। मनोहर ऊँचाई में तो प्रायः उतना ही है, जितना चौथे अंक में था, लेकिन ऊपर के ओठ पर रेख निकल आने के सबब उम्र अधिक दिखने लगी है। मनोहर खादी की रङ्गीन शेरवानी और खादी का ही सफेद चूड़ीदार पाजामा पहने है। सिर पर गाँधी टोपी लगाये है। मनोहर आकर पहले रमा और फिर मनसाराम के पैर छूता है।]

मनसाराम—

हाथ जोड़ने की जगह आज यह पैर छूना कैसा, मनोहर ? यह तो कल नतीजा निकलने पर होना चाहिए।

संतोष कहाँ ?]

नीतिव्रत—

नतीजा आज ही निकल आया, मनसाराम ! मनोहर सारी यूनीवर्सिटी में प्रथम आया है।

[मनसाराम चरखा चलाना बन्द कर मनोहर को छाती से लगा लेता है। रमा की आँखों में आँसू भर आते हैं। सब बैठते हैं। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।]

मनसाराम—

(गला साफ़ करता हुआ, गद्‌गद् स्वर से) तूने अपनी माँ को आज असीम हर्ष पहुँचाया है, मनोहर !

[रमा के नेत्रों से आँसू गिरने लगते हैं।]

मनोहर—

(गला साफ़ करते हुए गद्‌गद् स्वर से) अभी…अभी मैंने क्या किया है, बाबू जी, यह अध्ययन तो सेवा के लिए साधन मात्र है।

[फिर कुछ देर तक कोई कुछ नहीं बोलता।]

मनोहर—

एक प्रार्थना करूँ, बाबू जी ?

मनसाराम—

क्या ?

मनोहर—

अब आगे मेरा पढ़ना बन्द कर दीजिए।

रमा—

(भर्राये हुए स्वर से) यह क्यों ? यह क्यों ? तुम्हें एम० ए० तो पास करना ही चाहिए।

मनोहर—

(नीतिव्रत की ओर देखकर) चाचा जी अपनी प्रोफेसरी से स्तीफा दे आये हैं।

मनसाराम—

(नीतिव्रत की ओर देखकर) यह क्यों, नीतिव्रत ?

नीतिव्रत—

मुझे यहाँ का स्कूल और बोर्डिंग सँभालना है।

मनोहर—

और मुझे चाचा जी के साथ अब यहीं सेवा करना है।

[कुछ देर कोई कुछ नहीं बोलता।]

मनसाराम—

तब यहाँ अब संस्थाएँ और...और भी आरम्भ की जा सकती हैं। मेरी राय है कि अब पहले संगीत और चित्रकला विद्यालय खोले जायँ।

रमा—

परन्तु...परन्तु एम० ए० तक अगर मनोहर पढ़ लेता...।

मनसाराम—

नहीं, जाने दो, रमा ! मनोहर अब गँवार नहीं रहा है, और सच्चा सच्चरित्र होने के लिए सौन्दर्य से युक्त सेवा का जो वायुमंडल तुमने यहाँ उत्पन्न किया है वह शायद उसके लिए उस कालेज के वातावरण की अपेक्षा कहीं अच्छा सिद्ध होगा।

नीतिव्रत—

इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है, भाभी !

रमा—

(विचारते हुए) यदि गुरु शिष्य दोनों की राय है तो मुझे कुछ नहीं कहना है।

[कुछ देर निस्तब्धता ।]

नीतिव्रत—

क्यों, मनसाराम, अब तो जीवन से तुम्हें सन्तोष हुआ ?

मनसाराम—

सन्तोष ? (कुछ विचार कर) सन्तोष के सम्बन्ध में तो शायद अभी कुछ कहना कठिन है, पर……पर बार-बार जैसा असन्तोष…… असन्तोष उभरता था, वैसा अनुभव इन दिनों में नहीं हुआ। (और गम्भीरता से विचारते हुए) और……और सन्तोष की सीढ़ी भी तो नीचे से ही चढ़ी जा सकती है।…सौ, हजार या लाख मील की यात्रा भी एक कदम उठाने से होती है।…हाँ, सीढ़ी चढ़ने के पहले,

यात्रा करने के पहले ठीक रास्ते की खोज आवश्यक होती है। बिना उसके निर्दिष्ट स्थान पहुँचना नहीं हो सकता। इस खोज में अनेक प्रयोगों की ज़रूरत होती है। (कुछ रुककर) जीवन मरुस्थल सा होते हुए भी उसमें कुछ हरे-भरे स्थान हैं। जीवन समुद्र के सदृश होते हुए उसमें भी कुछ फूले फले टापू हैं। जिनके उत्तर हम नहीं देते, वही शायद सबसे कठिन सवाल हैं। इसलिए जीवन से सन्तोष हुआ या नहीं यह···यह तो, नीतिव्रत ! तुम जीवन समाप्त होते समय ही पूछ सकते हो। उसी वक्त शायद इसका ठीक उत्तर भी दिया जा सकता है। (कुछ रुककर) हाँ, एक बात जरूर है।

नीतिव्रत—

क्या ?

मनसाराम—

सन्तोष का मार्ग खोजते रहना चाहिए और सच्चा सन्तोष कदाचित् असन्तोष ही है। (फिर कुछ रुककर) हाँ, मुझे आशा का बल अवश्य है, क्योंकि आशा छोड़ना आने वाले कल को भी गये हुए कल के साथ खो देना है। (अपने लिखे हुए कागजों को उठाकर) नीतिव्रत ! यह नाटक मैंने आज ही समाप्त किया है।

नीतिव्रत—

नाटक का नाम क्या रखा है !

संतोष कहाँ ?]

मनसाराम—

नाम......नाम ?

नीतिव्रत—

हाँ !

मनसाराम—

संतोष कहाँ ?

[मनसाराम इन कागज़ों को उलटता पलटता है। सब उसकी ओर देखते हैं।]

समाप्त